कृष्णकुमारीनाटक।

जिसे

रामकृष्णवर्म्मा

सम्पादक भारतजीवन बनारस

ने

हिन्दीरसिकों के शिक्षा और चित्तविनोदार्थ बङ्गभाषा से शुद्ध आर्य्यभाषा में अनुवाद किया।

ऐक्ट २० सन् १८४७ के अनुसार रजिष्टरी हुई है।

काशी।

भारतजीवन प्रेस में मुद्रित हुआ।

कृष्णकुमारीनाटक ।

जिसे

रामकृष्णवर्म्मा

सम्पादक भारतजीवन बनारस

ने

हिन्दी रसिकों के शिक्षा और चित्तविनोदार्थ बङ्गभाषा से शुद्ध आर्य्यभाषा में अनुवाद किया ।

काशी ।

भारतजीवन यन्त्रालय में मुद्रित हुआ ।

सन् १८९९ ई० ।

धन्यवाद।

हम अत्यन्त कृतज्ञता पूर्वक प्रकाश करते हैं कि स्वर्ग-वासी बाबू राजकिशोर दे के पुत्र बाबू ज्ञानकिशोर देने हमारी प्रार्थनानुसार इस ग्रन्थ के अनुवाद और प्रकाश करने की आज्ञा हमें देकर अनुग्रहीत किया जिस्से हिन्दी के रसिकों को भी इसका आनन्द प्राप्त होगा और वे देखेंगे कि प्राचीन राजा महाराजाओं ने किस प्रकार प्राणसमर्पण कर धर्म्मरक्षा की है। हम अपने परम मित्र कलकत्ता नि-वासी बाबू व्रजनाथ पण्डित को भी विपुल धन्यवाद देते हैं कि उन्हों ने इस कार्य्य में हमारी विशेष सहायता की है। हम आशा करते हैं कि उक्त स्वत्वाधिकारी की आज्ञानुसार हम और भी अनेक ग्रन्थ हिन्दी भाषा में समयानुसार प्र-काश करते जायगे।

रामकृष्ण वर्म्मा
सम्पादक भारतजीवन
बनारस।

भूमिका ।

पाठकों के प्रति यह विदित हो है कि जब से श्रीयुत भारतभूषण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने और विशेषतः विद्वद् शिरोमणि लाला श्रीनिवासदासजी ने इस भारतवर्ष को छोड़ स्वर्गलोक को भूषित किया तब से अभागिनी हिन्दी में कोई भी नाटक उपन्यास अथवा कोई अपूर्व मनोहर ग्रन्थ देखने में न आया । नाटकों की जैसी कुछ दुर्दशा इनदिनों है वह केवल वेही लोग जान सकते हैं जो नाटक के गुण दोष और लक्षणों से अभिज्ञ हैं। इन दिनों यह परिपाटी पड़ गई है कि दो तीन पुरुषों की बात चीत अथवा रंगभूमि पर व्यर्थ ही हाथ पैर हिलाने ही को लोग नाटक कह देते हैं । स्वर्गवासी बाबू हरिश्चन्द्र जी ने इन दोषों के दूर करने और लोगों को नाटक के भेद लक्षण और लाभ समझाने के लिये "नाटक" नामक एक उत्तम ग्रन्थ लिखा था परन्तु आलसी लोग उसे कब देखते हैं। दूसरे यह ऐसा नाटक है कि इस में शृङ्गार, हास्य वीर, करुणा, इत्यादि सब रसों का लेश है, धर्मरक्षा और मानरक्षा का तो यह आदर्शस्वरूप है । ऐसे नाटक की अत्यन्त आवश्यकता हिन्दी में जान हमने स्वर्गवासी माइ

बैल मधुसूदनदत्त महाशय के ग्रन्थ का अनुवाद प्रकाश किया है। इससे हमारी कदापि यह इच्छा नहीं है कि हम कोई मुनाफा उठावें अतएव इसका मूल्य भी इतना स्वल्प रक्खा है कि छपाई का खर्च मात्र केवल निकल आवे, और हिन्दी के भण्डार में यह भी एक छोटा सा ग्रन्थ हो जाय। यदि हमारे पाठकों को इसके पढ़ने से किञ्चित् भी देशाभिमान ज्ञान और धर्मरक्षा का अङ्कुर हृदय में जमेगा तो हम अपने अनुवाद का परिश्रम सुफल समझेंगे।

रामकृष्णवर्म्मा

सम्पादक भारतजीवन—बनारस।

समर्पण।

श्रीमन्महाराजाधिराज गोस्वामी श्री १०८ महाराज वालकृष्णलाल कङ्करौली नराधिपेषु—

पूज्यवर—

आज मैं अत्यन्त हर्षपूर्वक (कृष्णकुमारी) नाटक लेकर श्रीमान् की सेवा में उपस्थित होता हूं क्योंकि खाली हाथ श्रीयुत के सम्मुख कैसे आऊं। इसके समर्पण करने से मेरा यह अभिप्राय है कि भारतवासीगण देखें कि आप सरीखे विद्यानुरागी, महोदय मुझ सरीखे अकिंचन जन पर भी कितनी कृपा और अनुग्रह दृष्टि रखते हैं। यह नाटक उस उदयपुर के उच्चवंश के उज्वल कीर्ति और सच्चरित्र के वर्णन में है जिसके श्रीमान् ही पूज्य गुरु हैं और इस अलौकिक मान मर्य्यादा और धर्म्मरक्षा के कारण आपही के पूर्वजों की भिक्षा है अतएव "त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।"

आपका अनुग्रहाकांक्षी

रामकृष्णवर्म्मा

सम्पादक भारतजीवन प्रेस—बनारस।

नाटकस्थ पात्रों के नाम।

भीमसिंह	...	उदयपुर के महाराज।
बलेन्द्रसिंह	...	महाराज भीमसिंह के छोटे भ्राता।
सत्यदास	...	महाराज भीमसिंह के मन्त्री।
जगतसिंह	...	जयपुर के महाराज।
नारायणमिश्र	...	महाराज जयपुर के मन्त्री।
धनदास	...	महाराज जयपुर का सखा।
अहिल्यादेवी	...	महाराज भीमसिंह की रानी।
कृष्णकुमारी	...	महाराज भीमसिंह की कन्या।
तपस्विनी	...	उदयपुर राजकुल की पूज्य।
विलासवती	...	महाराज जयपुर की वेश्या।
मदनिका	...	विलासवती की सखी।

नौकर, रक्षक, दूत, सन्यासी इत्यादि।

RAM KRISHNA VARMA,

Proprietor,

BHARAT-JIWAN PRESS, BENARES.

स्थान रङ्गभूमि ।

रङ्गशाला में नान्दी मङ्गल पाठ ।

दोहा ।

जयति प्रेम दोउ वरन जहँ वरनविचार न होय ।
वरन हेत वरनहिं जहां वर नहिं तन धन दोय ॥

सूत्रधार का प्रवेश ।

सूत्रधार—(आकाश की ओर देखकर) धन्य ईश्वर ! इस घोर कलि कठोर के बीच में भी जहां चारोंओर से नीचगण बुद्धि, विद्या, चातुरी, राजनीति, कलाकौशल, राजकीर्त्ति, धर्म्मनिष्ठता इत्यादि को उच्छिन्न कर भारत को आरत कर रहे हैं तहां भी यह महाराज द्विजराज काशिराज की सभा महाराज भोज विक्रमादि की सभा की शोभा झलका रही है। (स्वगत) क्या कलि में सर्व प्रकार की विद्या यवन नीचों के भय से चारोंओर से चलायमान हो अन्नपूर्णा की नगरी में मुक्ति के हेतु मूर्त्ति धारण कर सभासद के व्याज से साक्षाद्विश्वनाथ स्वरूप महाराज काशीराज श्री १०८ ईश्वरीप्रसादनारायणसिंह वीरपुङ्गव के साथ सनाथ होने को उपस्थित हैं ?। तो इस अलौकिक शोभा को निज प्राणप्रिया को भी दिखाऊँ तो ठीक हो।

(प्रकाश) अरी प्रिये ! शीघ्र इधर तो आ ।

नटी—प्राणनाथ ! क्या आज्ञा है ? किस हेतु यह दा स्मरण की गई ? ।

सूत्रधार—अरी प्राणप्रिये ! अपने नेत्रों को तो सुफल करे देखो यह वररुचि के अवतार वैयाकरणसिंह पं० श शिवकुमारमिश्र हैं । यह साक्षात् कालिदास घटकर्पर। कवि के मूर्त्तिसम पण्डित चन्द्रनराम त्रिपाठी तथा य पण्डित शीतलाप्रसाद तथा यह नृसिंहशास्त्री और य उनके पुत्र महामहोपाध्याय गङ्गाधरशास्त्री हैं । य दर्शनशास्त्र के आचार्य श्रीकैलासचन्द्र शिरोमणि त यह पण्डित रामभिश्रशास्त्री हैं । यह साक्षाद्वराह लाराचार्य के अवतार महामहोपाध्याय बापूदेवशार सी० आई० ई० तथा यह महामहोपाध्याय पूज्य पण्डित श्रीसुधाकर द्विवेदी हैं । यह देखो साक्षा धन्वन्तरि वैद्यराज मूर्त्ति धारण किये अमृतशास्त्री वे हैं । प्रिये ! आज तो मुझे महाराज विक्रम की सभ या सा आनन्दानुभव हो रहा है ।

नटी—प्राणवल्लभ ! मेरा जी चाहता है कि ऐसे २ महान् भावों के सन्मुख हमलोग भी जहां तक हो अपने गुण को दिखावें ।

सूत्रधार—प्राणवल्लभे ! यह तो मेरी भी इच्छा है कि इन्हें

कोई नाट्यलीला दिखाऊँ, पर कौन सा नाटक खेलूं यही विचार कर रहा हूं।

ी—नाथ! बहुत से अद्भुत नाटक, शृङ्गार, हास्य करुणा वीर, अद्भुत, भयानक इत्यादि रस से, तथा समाज संशोधन, देशहितैषिता भारतदुर्दशाप्रदर्शन गुणों से भूषित हैं, चाहे जो खेलिये सब में मैं विख्यात हूं।

त्र०—प्रिये! नाटक तो सभी हैं परन्तु ऐसे २ गुणियों को रिझानेवाला नाटक तो अभी तक मेरे मन में कोई न जँचा।

टी—प्राणेश! नाटक के रसिकों के न होने से बहुत दिनों से जो नाटक नहीं खेला गया इसे क्या आप भूल गये? शकुन्तला, भारतजननी, नीलदेवी, भारतदुर्दशा इत्यादि सभी तो एक से एक उत्तम भरे पड़े हैं।

त्र०—हां ठीक है परन्तु ये विद्वज्जन, रासलीला इन्द्रसभा, पारसीलीला लैलीमजनूं, गुलवकावली तथा भारतजननी इत्यादि नाटकों से क्या प्रसन्न होंगे? जैसे भ्रमर नित्य नई २ सुमनवासना का रसिक होता है तैसेही विद्वज्जन नित्य २ नई २ कलाचातुरी के अनुरागी होते हैं सो प्रिये! इन्हें कोई नूतन नाटक जो देशहितैषिता इत्यादि गुणों से भूषित हो दिखाना चाहिये।

टी—नाथ! यदि अपराध क्षमा हो तो कुछ निवेदन करूं।

सूत्र०—प्रिये निःशङ्क कहो।

नटी—नाथ! अनुपम जवाहिर वही है जिसके लिये सुन्दर जौहरी भी प्राण दे, सो स्मरण कीजिये कि ऐसे कुअवसर में भी विद्वद्वर माइकेल मधुसूदनदत्त प्रणीत जिस कृष्णकुमारीनाटक के सीखने के लिये आप नाटकलीलापारङ्गत होकर भी रात दिन व्यग्र थे और बङ्ग भाषा में होने के कारण उसकी लीला से वञ्चित थे, अन्त में प्रार्थनापूर्वक बाबू रामकृष्णवर्म्मा सम्पादक भारतजीवन द्वारा हिन्दी में अनुवाद करा बड़े श्रम और प्रेम से अभ्यास कर मुझे भी अभ्यास कराया। हे प्राण वल्लभ! मैं तो नाथ की आज्ञाकारिणी दासी ही हूं, जिसके लिये आज्ञा मिलेगी वही खेल कर दिखाऊँगी परन्तु मेरा मन तो बारबार पुराने नाटकों के खेलने से उपराम हो गया है, उत्कण्ठ अभिलाषा तो यह है कि इसी नये अभ्यस्त नाटक को खेलूं।

सूत्र०—(नटी का हाथ धर के शास्त्रों में सत्य लिखा है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को चौगुनी बुद्धि होती है, धन्य प्रिये! आज ऐसे अपूर्व नाटक का स्मरण दिलाया कि जिसमे उत्तम कोई नहीं सो मेरा तो मन स्थिर हो गया अब विलम्ब न करना चाहिये।

नटी—नाथ! इस नाटक के उत्तम होने में तो कुछ सन्देह

नहीं परन्तु प्राणि मात्र में रुचि विचित्र २ होती है सो यदि आज भाग्यवश हम लोगों का खेल महाराज द्विजराज काशिराज श्रीईश्वरीप्रसादनारायणसिंह बहादुर G. C. S. I. की सभा मध्य आनन्दजनक हुआ तो और भी अनेक नाटकों के अनुवाद के लिये हमलोग उक्त सम्पादक महाशय से निवेदन करेंगे।

सूत्र०—हां हां इसमें क्या कहना है, बस चलो अब विलम्ब न करो, सज्जित होकर अपने २ काम पर उपस्थित हो जायँ।

(दोनों जाते हैं)

इति प्रस्तावना।

कृष्णकुमारीनाटक।

प्रथम अङ्क।

प्रथम गर्भाङ्क।

स्थान जयपुर—राजगृह।

(राजा जगतसिंह और उनके पीछे पत्र हाथ में लिये हुये मन्त्री का प्रवेश)

राजा—आह! क्या आपत्ति है!!! क्या तुम हमें एक क्षण भी विश्राम न करने दोगे? तुम्हीं जाकर इसका जो कुछ हो सो कर डालो।

मन्त्री—महाराज! पृथ्वी का भार केवल शेष भगवानही उठा सक्ते हैं और किस्की सामर्थ्य है? श्रीमान् इतने विरक्त न होवें।

राजा—मन्त्रिवर! शेष भगवान के साथ हमारी तुलना कैसी हो सक्ती है? वे साक्षात् देवांश हैं और मैं तो केवल एक क्षुद्र मनुष्य मात्र ठहरा। आहार, निद्रा समय समय पर विश्राम, ये सब न होने से तो हमारा जीवन दुष्कर है सो देखो इस समय हमें आलस्य जान पड़ता है, न होय तो ये सब पत्र सन्ध्योपरान्त देख लिये

जायेंगे, इसमें कुछ हानि थोड़ेही है, यवनदल वा महाराष्ट्र सैन्य कुछ इसी समय तो आक्रमण करने आतेही नहीं?

(धनदास का प्रवेश)

अरे धनदास ! आओ २ कहो हो तो प्रसन्न न ?

धनदास—श्रीमान् के अनुग्रह से सब कुशल है, यह अधीन तो महाराज का चिरदास है, जहां श्रीमान् के चरणों की कृपा है वहां क्या कुछ अमङ्गल हो सक्ता है ?

मन्त्री—(स्वगत) सभी विनाश होगा और क्या ! इस सत्यानाशी के रहते क्या कोई काम होगा ? अच्छा ! चलो चलें, जिस पुरुष का चित्त कामकाज में नहीं लगता उससे काम कराना अत्यन्त कठिन है, चलो (जाता है)

राजा—कहो तो क्या हाल है ?

धन०—(कुछ मुस्कुराकर) महाराज इस निकुञ्जवन के तो प्रायः सभी पुष्पों का रसपान श्रीमान् एक एक करके करही चुके हैं, रह गये वही भटकटैया और धतूरे इत्यादि बचे हैं सो इस जयपुर में तो महाराज के योग्य और कोई स्त्री दृष्टि नहीं पड़ती।

राजा—सो क्यों ? क्या सागर भी कभी वारिशून्य हुआ है ?

धन०—महाराज—अगस्त भगवान के सोखने के सन्मुख क्या सागर में कभी जल ठहर सक्ता है ?

राजा—अच्छा तो फिर कोई मेघवृष्टि का उपाय है? हो तो बताओ।

धन०—महाराज इसके लिये कुछ चिन्ता न करें इस पृथ्वी में एकही तो नहीं सात सागर हैं।

राजा—सुनो धनदास! तुम्हारी यह बात सुनकर हमारा चित्त बड़ा चञ्चल हो गया है अच्छा कहो तो क्या उपाय है?

धन०—जी उपाय की कथा पीछे कहूंगा तबलों श्रीमान् इस चित्र को तो देखें। मैं इस समय इस चित्र को केवल दिखानेही के निमित्त यहां आया हूं।

राजा—(चित्र देखकर) आहा! यह किसकी प्रतिमूर्त्ति है धनदास! ऐसा अलौकिक सौन्दर्य्य तो हमने कभी नहीं देखा।

धन०—महाराज! आपने क्या मैं तो जानता हूं कि ऐसा सुन्दर स्वरूप तो किसी ने भी इस संसार में न देखा होगा।

राजा—होई तो, आहा क्या चमत्कारिक स्वरूप है। अच्छा धनदास! यह तो बतलाओ कि यह कमलिनी किस सरोवर में खिली है? यदि हमें यह विदित हो जाय तो हम वायु रूप होकर वहां पहुंचें।

धन०—महाराज! इस विषय में बहुत व्याकुल होने से क्या होगा? यह कुछ साधारण सी बात तो है ही नहीं! यह सुधा चन्द्रलोक में रहती है, इसके चारोंओर रात्रि दिन रुद्रचक्र घूमा करता है। इसके समीप मच्छड़ तक के पहुंचने की भी सामर्थ्य नहीं है।

राजा—अच्छा कहो तो क्या हाल है; कुछ सुनें भी तो।

धन०—बहुत अच्छा महाराज।

राजा—तो कहता क्यों नहीं? डर किसका है?

धन०—महाराज यह उदयपुर की राजकन्या है। इस राजकुमारी का नाम कृष्णाकुमारी है।

राजा—(ससम्भ्रम) हां! (चित्र देखकर) धनदास तूने जो कहा था कि यह सुधा चन्द्रलोक में रहती है सो यथार्थही है। आहा! जिस उच्चवंश में सैकड़ों राजसिंह का जन्म हुआ, जिस बंश के यश:सौरभ से भारतभूमि परिपूर्ण है, उस बंश में यदि ऐसी अनुपमा सुन्दरी कामिनी न होगी तो और कहां होगी? जिस विधाता ने नन्दनबन में पारिजात पुष्प को सिरजा है उसी ने इस सुन्दरी को उदयपुर के राजकुल में उत्पन्न किया है। आहा! देखो धनदास—

धन०—महाराज।

राजा—तू इस वंश के आदिकारण बाप्पारावल का यथार्थ नाम जानता है ?

धन॰—महाराज, नहीं।

राजा—उस महापुरुष को लोगों ने आदर से बाप्पा नाम दिया था, उनका यथार्थ नाम शैलराज था। आहा! उनका शैलराजत्व इस चित्रपट सेही झलक रहा है।

धन॰—कैसे महाराज ?

राजा—दुर्मूर्ख ! साक्षात् भगवती मन्दाकिनी ने शैलराज के घर जन्म लिया था कि नहीं ?

धन॰—(स्वगत) मछली तो वंसी में फँस गई है केवल किनारे खींच लेने की देर है।

राजा—देखो धनदास—

धन॰—हां महाराज।

राजा—तुम यह चित्रपट हमें दे दो—

धन॰—महाराज यह अधीन तो आपका विना मूल्य का दास है, इसका तो सर्वस्वही महाराज का है परन्तु—

राजा—परन्तु क्या ?

धन॰—महाराज यह चित्रपट इस दास का नहीं है, यदि मेरा होता तो इसी क्षण श्रीमान् की सेवा में समर्पण कर देता, हमारा एक मित्र उदयपुर से यहां आया है उसी ने मुझे यह चित्रपट विक्री करने को दिया है।

राजा—अच्छा तो है, यदि तुमारे मित्र को यथोचित मूल्य दिया जाय तो वह दे देगा ?

धन०—(स्वगत) अब कहां जा सक्ता है ? अब ले लिया है (प्रकाश) जी हां सो क्यों न होगा ? उसे तो बेचना ही है ! यथार्थ मूल्य पाने पर क्यों न देगा ? किन्तु जितना मूल्य यह मांगता है वह कुछ अधिक जान पड़ता है ।

राजा—देखो धनदास ! यह चित्रपट अमूल्यरत्न है । अच्छा बताओ तो तुम्हारा मित्र क्या और कितना चाहता है?

धन०—(स्वगत, हां अमूल्यरत्न है ! तो फिर क्या चिन्ता है? (प्रकाश) महाराज वह बीस सहस्र रुपया मांगता है इससे कम तो किसी प्रकार स्वीकार नहीं करता मैं इसके पूर्वही श्रीमान् के बिना कहे उसे बहुत कुछ कह सुन चुका हूं । कई लोग उसे १६०००) रुपये पर्यन्त देते थे परन्तु इतने पर भी वह किसी प्रकार—

राजा—अच्छा, तो जो मांगता है सोही दिया जायगा हम अपने कोषाध्यक्ष को अभी पत्र लिख देते हैं, तुम उस से ये रुपये लेकर अपने मित्र को दे दो परन्तु यहां लिखने के लिये तो लेखनी और पत्र नहीं है ।

धन०—महाराज मुझे आज्ञा हो तो मैं इसी क्षण सब कुछ प्रस्तुत कर दूं ।

राजा—अच्छा लाओ।

धन०—जो आज्ञा, मैं अभी आया।

[जाता है

राजा—(स्वगत) हमें तो स्वप्न में भी यह ज्ञान नहीं था कि महाराज भीमसिंह के यहां ऐसी स्वरूपवती कन्या है (चित्र देखकर) हे राज्यलक्ष्मी! तू किस ऋषिवर के शाप से इस पृथ्वी में आकर बास करती है।

(लिखनी और मसिपात्र लिये धनदास का पुन: प्रवेश)

धन०—महाराज मैं ले आया (राजा का बैठना और पत्र लिखना—स्वगत) इस विचार के आरम्भही में खूब लाभ हुआ देखें अन्त पर्य्यन्त कैसे निभता है। कुशलता में तो त्रुटि होहीगी नहीं यदि और कुछ लाभ न हुआ यो हम समझेंगे कि चोर को रात्रिनिवास काही लाभ बहुत है और फिर इसमें सन्देह क्या? व्यय कुछ भी नहीं और लाभ इतना, क्या कुछ कम है?

राजा—यह लो (पत्र देते हैं)

धन०—महाराज आप साक्षात् कर्ण हैं।

राजा—तुमने जो हमें यह अमूल्यरत्न दिया इससे हम तुम्हारे अत्यन्त बाधित हैं।

धन०—महाराज ! मैं तो आपका दास हूं देखिये यदि आप इस दास का कहना स्वीकार करें तो अनायासही यह स्त्रीरत्न श्रीमान् को प्राप्त हो जाय ।

राजा—(उठकर) क्या कहा धनदास क्या हमारा ऐसा भाग्य है ?

धन०—महाराज ! इसमें कुछ सन्देह नहीं कि उदयपुर-राजकुमारी के पाणिग्रहण की इच्छा प्रकाश करतेही आपकी इच्छा फलवती होगी । आपके पूर्व पुरुषों का विवाह कईवेर इस राज्यवंश में हुआ है और आप स्वयं कुल, मान, रूप, गुण इत्यादि सभी प्रकार से राजकुमारी कृष्णा के योग्य पात्र हैं जैसे पञ्चालदेशाधिपति द्रुपद महाराज अपनी कन्या को पौरवकुलतिलक अर्जुन को देने के लिये व्यग्र थे उसी प्रकार महाराज भीमसिंह भी आपका नाम सुनतेही अत्यन्त व्यग्र होंगे ।

राजा—हां उदयपुर के वंश में हमारे पूर्ववंशजों का विवाह हुआ था इसमें सन्देह नहीं, किन्तु महाराज भीमसिंह नितान्त अभिमानी हैं यदि वे इस विषय में असम्मत हुये तो फिर हमारी मानरक्षा कैसे होगी ?

धन०—महाराज आप सूर्य्यवंशचूड़ामणि हैं आप सरीखे बड़े लोग प्रायः अपना गुण भूल जाते हैं इसी कारण

आप अपना माहात्म्य नहीं जानते क्या राजा जनकजी ने श्रीमहाराज रामचन्द्र को विमुख फेरा था ?

राजा—(कुछ सोचकर) अच्छा तू मन्त्री को तो बुला ला।

धन॰—जो आज्ञा महाराज।

[जाता है।

राजा—(स्वगत) देखें मन्त्री की क्या अनुमति है क्योंकि इस विषय में सहसा हस्तक्षेप कर वैठना उचित नहीं, आहा। यदि भीमसेन इसमें सम्मत हों तब ता हमारा जोवन जन्म सुफल हो जाय। (वैठते हैं)

(मन्त्री के सहित धनदास का पुन: प्रवेश)

मन्त्री—देव, यदि आज्ञा हो तो ये दो चार पत्र इस समय श्रीमान् के सम्मुख पढ़ सुनाऊँ।

राजा—(हँसकर) न। न! यह सव सन्ध्योपरान्त देखा जायगा। इस समय वैठो, तुमसे हमको और कुछ वात करना है।

मन्त्री—(वैठकर) जैसी आज्ञा।

राजा—देखो मन्त्री, महाराज भीमसिंह को क्या कोई सन्तान सन्तति है ?

मन्त्री—जी हां है।

राजा—कै पुत्र, कै कन्या, कुछ जानते हो ?

मन्त्री - जी नहीं, इस आशीर्वादक ने तो केवल राजकुमारी कृष्णा ही का नाम सुना है।

धन०—क्यों महाशय, क्या राजकुमारी कृष्णा परम सुन्दरी है?

मन्त्री—लोग तो कहते हैं कि स्वयम् याज्ञसेनी ने पुनः इस भूमण्डल में अवतार लिया है।

धन०—तो फिर महाशय, आप इस राजकुमारी के पाणि-ग्रहण का उद्योग हमारे महाराज के साथ क्यों नहीं करते? महाराज भी तो साक्षात् नरनारायण के अव-तार हैं!

मन्त्री—इसमें क्या सन्देह है? परन्तु इस कार्य्य में कुछ थोड़ी बाधा है।

राजा—बाधा कैसी?

मन्त्री—महाराज, मरुदेश के मृत अधिपति वीरसिंह के साथ इस राजकुमारी के पाणिग्रहण की बातचीत हुई थी परन्तु उनके अकालही में लोकान्तर प्राप्त हो जाने के कारण वह कार्य्य न हो सका, अब हम सुनते हैं कि उस देश के वर्त्तमान नरपति मानसिंह ने इस कन्या के पाणिग्रहण की इच्छा की है।

राजा—ऐसा? बामन होकर चन्द्रमा पर हाथ! यह बात तो सर्वत्रही राज्य भर में विख्यात है कि यह मानसिंह

किसी प्रकार हमारा साम्हना नहीं कर सकता सो अब यह कृष्णकुमारी से विवाह करना चाहता है! क्या आश्चर्य्य है! दुरात्मा रावण क्या वैदेही का उपयुक्त पात्र था? देखो मन्त्री तुम इसी क्षण उदयपुर को दूत भेजो हम इस राजकन्या को अवश्यही बरेंगे। (उठकर) यदि मानसिंह इसमें किसी प्रकार का विघ्न करे तो मैं उसे यथोचित दण्ड दिये बिना न रहूंगा।

मन्त्री—धर्म्मावतार! यह क्या आपस के विवाद का समय है? देखिये देशवैरीदल चारोंओर दिन दिन प्रबल होते जाते हैं।

राजा—आह! देशवैरीदल! तुम तो मन्त्री देशवैरीदल को क्या विचारते २ एकदम पागल हो गये हो! एक जो दिल्ली सम्राट् है सो तो विषहीन फणि है। और जो महाराष्ट्र राजा का हाल पूछो सो नितान्त लोभी है; कुछ द्रव्य देनेही से तो उसका सन्तोष हो जायगा। अच्छा तो जाओ अब यथाविधि दूत को भेजो, मानसिंह की क्या सामर्थ्य जो हमारे साथ विवाद कर सके!

धन०—(धीरे राजा से) महाराज इस दास को भेजनेही से सब कार्य्य हो जायगा।

राजा—(धीरे धनदास से) यह तो अच्छी बात है। तुम

तो एक सद्वंश के चत्रिय हो तुम्हारे जाने में हानि क्या है ? (प्रकाश) देखो मन्त्री तुम धनदास को उदयपुर पहुंचा दो।

मन्त्री—जो आज्ञा महाराज—(धनदास के प्रति) तो आइये आप हमारे सङ्ग आइये इस विषय में जो कुछ कर्त्तव्य हो सो स्थिर किया जाय।

राजा—जाओ धनदास जाओ।

धन०—जो आज्ञा महाराज।

[मन्त्री और धनदास दोनों जाते हैं।

राजा—(टहलकर स्वगत) आहा ! क्या यह बहुमूल्य रत्न हमारे भाग्य में है? अच्छा देखें विधाता क्या करता है? धनदास अत्यन्त चतुर मनुष्य है यदि उससे यह कार्य्य उत्तम रीति से न हुआ तो और कौन कर सकेगा ?

(धनदास का पुनः प्रवेश)

धन—महाराज—

राजा—क्यों धनदास तू फिर लौट क्यों आया ?

धन०—जी महाराज, मन्त्री महाशय के साथ हमारा एक बात में मेल नहीं मिलता इसी कारण मुझे श्रीमान् के सन्मुख पुनः आना पड़ा।

राजा—सो क्या बात है।

धन०— महाराज। इस दास का यह विचार है कि ऐसे कार्य्य में जाती समय थोड़ी सी सेना भी जो साथ हो तो उत्तम होगा किन्तु मन्त्री महाशय कहते हैं कि ऐसा करने से कुछ द्रव्य का अधिक व्यय होगा।

राजा—छिः! छिः! छिः! वृद्ध हो जाने से लोगों की बुद्धि ऐसीही हो जाती है तो क्या मन्त्री की इच्छा है कि तुम अकेलेही जाओ?

धन०—ऐसाही तो जान पड़ता है।

राजा - छिः! क्या लज्जा की बात है! एक तो महाराज भीमसिंह स्वयं अत्यन्त अभिमानी हैं दूसरे यदि इस विषय में कुछ त्रुटि हुई तो कुछ उलटाही सामान खड़ा हो जायगा।

धन० - जी इसमें क्या सन्देह है! यह दास भी तो यही कहता है!

राजा—अच्छा जाओ मन्त्री से कहो कि वह तुम्हारे साथ सौ घोड़े, पांच हाथी, और एक सहस्र पैदल सिपाही कर दें। इस विषय में कृपणता करने से काम नहीं चलता।

धन०—महाराज आप प्रताप में इन्द्र, धन में कुवेर और बुद्धि में स्वयम् बृहस्पति के अवतार हैं, आपही विचारें कि जब सुरपति इन्द्र ने अमृतलाभ की इच्छा से समुद्र-

मथन किया था तो क्या वे इस महत्कार्य्य में अकेलेही प्रवृत्त हुये थे ?

राजा—देखो धनदास -

धन०—जी महाराज—

राजा—जिस प्रकार नल राजा ने राजहंस को दूत बनाकर दमयन्ती के समीप भेजा था उसी प्रकार हम भी तुम्हें भेजते हैं, देखो जिसमें हमारा यह उद्योग निष्फल न हो।

धन०—महाराज यदि आपके कार्य्य साधन में मेरे प्राण भी जांय तौभी मैं प्रस्तुत हूं किन्तु श्रीमान् के चरणों में मेरा एक निवेदन है।

राजा—क्या ?

धन०—महाराज—जिस हंस को राजा नल ने दूत बनाकर भेजा था उसे तो सोने के पङ्ख थे। इस दास को तो कुछ भी नहीं है—

राजा—(हँसकर) यह लो तुम यह अँगूठी ग्रहण करो।

धन०- महाराज आप साक्षात् दाता कर्ण के अवतार हैं।

राजा—तो अब विलम्ब केहि काज ? तुम मन्त्री के निकट जाकर ऐसा उद्योग करो जिसमें आजही यात्रा हो जाय। जाओ अब विलम्ब मत करो—अब हम इस समय विलासकानन को जाते हैं। (प्रस्थान)

५ धूल दत्तसिडइ पुर जाने के समय मे जयपुर
महाराजे से अंगूठी लेता है ॥

धन०—(स्वगत) अब तुम्हारी जहां इच्छा हो जाओ—हमारी जो इच्छा थी सो हो गई (परिक्रमण कर) धनदास कोई साधारण मनुष्य नहीं है । कहां तो उदयपुर के चित्रलेखक से बिना मूल्यही वह चित्र ले आया कहां राजा के हाथ बीस सहस्र पर बेच डाला, यह क्या किसी सामान्य बुद्धिवाले का काम है? आहा! हा! हा! बीस सहस्र मुद्रा अहा! हा! हा! और तिस पर यह अंगूठी घलुवे में! (देखकर) अहा! क्या बहुमूल्य रत्न इसमें जटित है हमारे प्रपितामह ने भी ऐसा बहुमूल्य मणि न देखा होगा! जो हो धन्य धनदास! कहां से ऐसी कुशलता सीखी? ज्योतिषी लोग कहते हैं कि जो ग्रह सूर्य भगवान की सेवा करता है सो उनके प्रताप से तेज लाभ करता है सो हम भी राजा के अनुचर हैं यदि हम राजपूजा में अर्थलाभ न करेंगे तो और कहां से करेंगे और यही तो चाहिये ही! अरे आज कल क्या नितान्त सरल होने से काम चलता है? कहीं पर झूठी प्रशंसाही करना होता है, कहीं बिना कारणही दोषारोप करना होता है. कहीं दो पुरुषों के बीच झूठमूठ की बातें लगाकर विरोध बढ़ा देना होता है! यह तो संसार का नियमही है अर्थात् जैसे हो ' स्वकार्य्यम् साधयेत् धीमान् कार्य्यभंगो

हि मूर्खता" ऐसा न करके जो अपने चित्त का हाल दूसरों से कह देता है सो क्या मनुष्य है? उस्का मन तो वेश्या का द्वार कहना चाहिये जहां कुछ भी आवरण नहीं है; जिस्की इच्छा हुई घुस गया, ऐसे पुरुष को तो इस लोक में अन्न मिलना कठिन है और परलोक में———अरे बाप! परलोक में निर्वंश और क्या? ओह! इस्की क्या चिन्ता है! चलो पहिले रुपया तो सूल करें फिर देखा जायगा अभी एकबार मन्त्री के यहां जाना है, अरेरे! यह तो बड़ा कण्टक बीच में है अच्छा देखनाही तो है कि मन्त्री की कितनी बुद्धि है।

[प्रस्थान]

द्वितीय गर्भाङ्क ।

स्थान जयपुर—विलासवती का घर ।

(विलासवती)

विलास०—(स्वगत) क्या आश्चर्य्य है ! जो महाराज ने आज इतना विलम्ब किया ! इसका क्या कारण ? (दीर्घनिश्वास लेकर) हाय ! मैं इस लम्पट जगतसिंह पर इतनी अनुरागवती क्यों हो गई हूं ! कहां तो मैंने विचारा था कि मैं इस नवयौवन की छलना से उसे वश करूंगी कहां स्वयम् उसकी दासी हो गई । क्या मैं सारिका की नाईं उसके जाल में फँस गई? यदि ऐ यह नहीं है तो उन्हें न देखने से मेरा चित्त इतना इधर क्यों हो जाता है ? (दीर्घनिश्वास) महाराज नेवारण का समय तो हो गया न जाने आज मेरा ल नेत्रों से कैसा कर रहा है ? (दर्पण के निकट बै स अश्रुधारा

(मदनिका का प्रवेश आ धनदास डर

(प्रकाश) अरी मदनिके ! देख तो स मुंह दर्पण में कैसा लगता है ? र खड़े हो

मद०—सखि! जैसे विमल सरोवर में कनकपद्म ?

अच्छा यह सब रहने दो; इस समय मैं जा आई हूं सो पहिले जी लगाकर सुन लो ।

विला०—क्या है सखि ! जान पड़ता है कि महाराज आते हैं।

मद०—फिर वही महाराज—महाराज क्या अब तुमारेही हैं जो आवेंगे ?

विला०—क्यों—क्यों—सो क्यों—कह तो क्या हुआ ? सुनें तो !

मद०—और क्या सुनोगी ? यह जो धनदास है इसका हाल तो तुम जानती नहीं—उस चाण्डाल के सदृश क्या इस संसार में और कोई है ?

विला०—क्यों उसने क्या किया ?

द०—और क्या करेगा ? जब तक तुमने उसका उपकार किया तब तक वह तुम्हारा था पर अब तो कुछ और रंग जान पड़ता है।

क्या कहा ? मैं तो उस का हाल कुछ भी नहीं ।

के क्या करोगी ? अच्छा तुमने उदयपुर के मसिंह का नाम सुना है ?

सुना क्यों नहीं ? वे सूर्य्यवंशचूड़ामणि हैं । नहीं जानता ?

रा यही प्रियपात्र धनदास राजा की पुत्री कुमारी से महाराज के विवाह का उद्योग कर रहा है !

विला०—यह बात तू ने किससे सुनी ?

मद०—क्यों ? क्या तुम इस नगर के बाहर रहती हो? यह हाल तो सभी जानते हैं कि कल प्रात:कालही धनदास पत्र लेकर उदयपुर की यात्रा करेगा—यह क्या ? यह तू रोने क्यों लगो? छि:! छि:! इसमें रोना काहे का? महाराज तो तुम्हारे स्वामी नहीं जो तुम्हें सतीत्व का भय हो ?

विला०—जा—तू यहां से जा—(रोती है)

मद०—सखो ! यह क्या? तेरे नेत्रों से अश्रुधारा तो रुकती हो नहीं, सखि यदि मैं ऐसा जानती तो क्या यह वृत्तान्त मैं तुझसे कभी कहती? ए देखो धनदास इधर आता है।देखो सखि, यदि तुम इस विषय को निवारण किया चाहती है, तो इसकी चेष्टा करो केवल नेत्रों से अश्रुपात करने से क्या होगा ? तुम्हारे इस अश्रुधारा को देखकर क्या महाराज भूल जायेंगे या धनदास डर जायगा ?

विला०—अच्छा आओ सखि, हमलोग छिपकर खड़े हो जांय देखें धनदास यहां आकर क्या करता है ?

(आड़ में छिप जाती हैं)

(धनदास का पुन: प्रवेश)

धन०—(स्वगत) अहा ! हा ! मन्त्रीराम की तो इच्छा थी कि हमारे सङ्ग अधिक सेना न जाय किन्तु हमने ऐसी कुशलता की कि वचा को हार मान हमारीही वात माननी पड़ी—आहा ! हा ! चाहे राजा होय चाहे मन्त्री होय धनदास के फन्दे में सभी आ जाते हैं ! ! मन्त्री महाशय शर्म्मा न हैं धन का लोभ कैसे छोड़ें । और इस सैन्यदल के मार्गव्यय के लिये जो धन इकट्ठा हाथ लगेगा वह सब अपनाही ठहरा और मार्ग में भी जो जहां मिला सव गटक ! जिसके साथ इतने लोग हैं उसे अव डर किसका है ? (कुछ सोंचकर) विलासवती पर जो महाराज का प्रेम था सो तो दिन पर दिन घटताही जाता है । अव इससे क्या? इससे तो हमारा अव कुछ भी उपकार नहीं होता ! परन्तु स्त्री वड़ी सुन्दर है। अच्छा तो अवकी वेर देखतेही हैं न (प्रकाश) कोई है ? विलासवती कहां है ? कोई वोलता नहीं।

(विलासवती का पुन: प्रवेश)

विला०—क्यों धनदास ! क्या विचारते थे कहो तो ?

धन०—यही तुम्हारा सौन्दर्य्य विचारते थे और क्या ?

विला०—हमारा सौन्दर्य्य ! यह तुम्हें किसने सिखाया ?

धन०—सिखावेगा कौन ? हमारे इन्हीं दोनों नेत्रोंही ने सिखा दिया है ।

विला॰—ठीक। ठीक। तुम तो धनदास इन दिनों बड़े रसिक हो गये हो।

धन॰—जो रसिक न होंय तो क्या करें?—देखो गौरीचरण-स्पर्श से एक पाषाण भी महारत्न की शोभा पाता है तिस्पर यह धनदास तो फिर तुम्हाराही दास ठहरा।

विला॰—अच्छा धनदास—तुमने क्या महाराज के हाथ कोई चित्र २००००) पर बिक्री किया है?

धन॰—ऐं?—नहीं तो—यह तुमसे किसने कहा?

विला॰—कहने कौन जायगा? यह तो सत्यही है।

धन॰—न, न—यह तुम्हें कहा किसने? भला तुम्हीं सोचो कि आजकल कोई किसी को बीस हजार रुपया दे देता है? क्या रुपये भी वृक्षों में फलते हैं कि तोड़ा और दे दिया?

विला॰—अच्छा जाने दो यह अँगूठी तुमने कहां पाया?

धन॰—(स्वगत. इस वेश्या ने तो बड़ा प्रपञ्च आरम्भ किया! (प्रकाश) यह अँगूठी महाराज ने मुझे रखने वास्ते दिया है।

विला॰—अच्छा कहो तो धनदास! वालू की भूमि जितने यत्न से मेघ के जल को रखती है जान पड़ता है कि तुम भी महाराज से कोई वस्तु पाने पर उतनेही यत्न से रखते हो?

धन०—क्या जाने भद्र, तुम क्या कहती हो? मुझे कुछ समझ नहीं पड़ता।

विला०—सो क्यों समझ पड़ेगा। तुम सरीखा तो दूसरा सरल मनुष्य इस संसार भर में हुई नहीं। मैं यह कहती हूं कि जैसे बालू की भूमि मेघ के जल को पातेही एकबार शुष्क कर जाती है उसी प्रकार महाराज से कुछ द्रव्यादि पाने पर तुम भी तो करते हो? अच्छा यह भी जाने दो। एक बात और पूछती हूं कि तुम महाराज का विवाह उदयपुर की राजकन्या से कराने का उद्योग करते हो?

धन०—(स्वगत) अरे! यह तो सभी चौपट हुआ। इस दुष्टिन ने यह सब हाल कहां से पाया?

विला०—क्यों उद्योगी महाशय! चुप क्यों हो रहे?

धन०—यह सब झूठमूठ की बातें तुमको किसने कहा? कहो तो—

विला०—झूठी बातें? इतने दिनोपरान्त मैंने तुम्हारे धूर्त्तपने का भेद पाया। जो जो बातें तूने हमसे कहीं हैं उन बातों को यदि महाराज सुनें तो तुझे उदयपुर न भेज कर साक्षात् यमपुर को भेज दें—

धन०—इस समय तो तुम जो कहो सोइ ठीक है! इसमें तुम्हारा क्या दोष है? यह कलि का धर्म्म है। कलियुग

है न ? आजकल जिसका उपकार करो सोई अपकार करने को उद्यत रहता है। तुम्हीं विचारो न कि तुम क्या थीं और अब क्या हो गई ? इस समय जो तुम इस राज्य में इन्द्राणी की नाईं सुखभोग कर रही हो यह सब किसकी क्षपा से है ? तो तुम हमारी चुगली न खाओगी तो चलेगा कैसे ? जो हमारा अपवाद तुम न करोगी तो और कौन करेगा ? तुम भी कलियुग की स्त्री हो न ?

विला०—हां ठीक है हम कलियुग की स्त्री हैं परन्तु तुम तो साक्षात् कलियुग के अवतारही हो ! तुम हमको पुरानी बातें स्मरण कराया चाहते हो; परन्तु उन सब बातों को तुम्हीं मन में विचारकर देखो तो ? तुम्हीं ने न धन के लोभ से हमारा धर्म्म नष्ट कराया यद्यपि मैं निर्धन माता पिता की कन्या थी तौभी धर्म्म मार्ग पर तो थी ! अच्छा तुम्हीं कहो कि किस दुष्ट वधिक ने इस पक्षी को फंसाकर इस सोने के पिंजड़े में बन्दकर रक्खा है (रोती है)

धन०—(स्वगत) अब इस स्त्री के सन्मुख अधिक बोलना ठीक न होगा क्योंकि यदि महाराज यह सब हाल पावेंगे तो पुनः निस्तार पाना कठिन होगा (प्रकाश) हम तो तुम्हारा हित छोड़ अहित कभी नहीं करते पर तुम तो हमारे ऊपर वृथाही दुखी होती हो।

विला०—अच्छा तो इस विवाह की वातचीत किसने उठाई ?

धन०—सो भला हम कैसे जाने ?

विला०—हम कैसे जाने ! तुम्हीं तो इसके सब कर्त्ताधर्त्ता ठहरे सो तुम न जानोगे तो और जानेगा कौन ?

धन०—हा ! हा ! तुम स्त्रियों की बुद्धिही ऐसी है। और हम जो कर्त्ताधर्त्ता हुये भी होंगे सो भी तो तुम्हारे उपकार से खाली नहीं है। तुम क्या सोचती हो कि हम जायेंगे और यह विवाह हो जायगा ? इस विषय में तो तुम निश्चिन्त रहो। यहीं बैठे २ जब तुम्हें सम्वाद मिलेगा तब तुम जानोगी कि धनदास तुम्हारा कैसा हितैषी है।

(नेपथ्य में)—अजी इस घर में धनदास हैं? महाराज उन्हें बुलाते हैं।

धन०—एलो सुनो—अच्छा अब हम जाते हैं तुम इस विषय में कभी कुछ चिन्ता मत करो। यदि चेत् महाराज यह विवाह कर भी लेंगे तो जबलों धनदास के शरीर में प्राण है तबलों तुम्हें कुछ भी चिन्ता नहीं है तुम्हारा जो यह नवयौवन और रूप है सो कुवेर का भण्डार है (स्वगत) अब रूप लेकर चाटो; लो हम तुम्हारा माथा ही खाने चले।

[जाता है।

विला०—(दीर्घ निश्वास ले कर स्वगत) अब न जाने क्या भाग्य में लिखा है ? कुछ कहा नहीं जाता क्या कारण है जो महाराज अभी तक नहीं आये ?

(मदनिका का पुनः प्रवेश)

मद०—क्यों सखि ! हमने जो कहा था जो सत्य निकला कि नहीं ? तो अब इसका उपाय क्या ठहरा ? इस विवाह के होने पर तो फिर तुम गईं !

विला०—तो फिर क्या उपाय किया जाय ?

मद०—उपाय तो हुई हैं कुछ चिन्ता मत करो, धनदास समझता है कि मेरे ऐसा कोई चतुर मनुष्य नहीं है किन्तु इसी बार तो देखना है कि बचा की कितनी बुद्धि है। आओ सखि हमारे संग आओ इस दुष्ट का प्रबन्ध कर देना कुछ बड़ी बात नहीं है।

विला०—अच्छा चलो—

[दोनों जाती हैं।

इति प्रथमाङ्क।

द्वितीय अङ्क ।

प्रथम गर्भाङ्क ।

स्थान उदयपुर—राजगृह ।

(अहिल्यादेवी और तपस्विनी का प्रवेश)

अहि०—भगवति ! हमारे दुःख का हाल क्या पूछती हो? हम जो जीती बची हैं सो केवल भगवान एकलिङ्ग का अनुग्रह और तुम्हारा आशीर्वाद ही इसका कारण है। हा! महाराज का मुख देखनेही से मेरा हृदय फटा जाता है। भगवति! हमने कौन ऐसे पाप किये हैं जो विधाता हम से एक ही बेर इतना बाम हो गया है।

तप०—राजमहिषि! आप इतनी व्यग्र क्यों होती हैं? यह तो संसार का नियमही है कि कभी सुख, कभी दुख, कभी हर्ष, कभी विषाद होता ही है। लोक जिसे राजभोग कहते हैं वह केवल सुखभोगही तो नहीं है? देखो महासागर के यात्रियों को क्या सदा अनुकूलही वायु मिलती है? कितने मेघ, कितने झड़, कितनी वृष्टि इत्यादि से उनकी शुद्ध गति में बाधा होती है सो क्या कोई गिन सकता है?

अहि०—(दीर्घ निश्वास लेकर) भगवति ! जिसने वह

प्रलयभड़ देखा है वही जानता है कि वह क्या पदार्थ है। यदि हमारी दुरवस्था की कथा सुनो तो—

तप॰—देवि ! मैं चिरकाल से उदासिनी हूं इस भवसागर का कल्लोल हमारे कर्णकुहरों में प्रवेश करनेही नहीं पाता परन्तु—

अहि॰—(कातरस्वर से) भगवति ! महाराज का खिन्न मुखकमल देख कर जीवन की इच्छा नहीं होती। हाय ! वह सुवर्ण सा शरीर एक बेर ही काला सा हो गया है ! विधाता ने यह क्या साधारण विडम्बना कीई है ?

तप॰—राजमहिषि !—सुवर्णकान्ति तो अग्नि के उत्ताप से और भी उज्ज्वल होती है सो आप की यह दुरवस्था आपके गौरवबृद्धि के अतिरिक्त कभी ह्रासकारक नहीं हो सकती। देखो साक्षात् धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर ने क्या क्या क्लेश और दुःख नहीं सहा !

अहि॰—भगवति ! मैं तो जानती हूं कि राजभोग की अपेक्षा यावज्जीवन वनवास करना अच्छा है। यदि राजपद सुखदायक होता तो क्या धर्म्मपुत्र राज्य-परि-त्याग करके महायात्रा में प्रवृत्त होते ?

तप॰ - हां—सो तो सत्य है। अच्छा राजमहिषि ! हम आप से एक बात यह पूछती हैं कि आप ने कहीं

राजकुमारी के विवाह की भी स्थिरता की है कि नहीं ?

अहि०—क्या स्थिर करें!—महाराज को क्या इन बातों पर ध्यान है ? (दीर्घ निश्वास लेकर) भगवति ! मैं आप से क्या कहूं मुझे ऐसा कोई समय अवकाश का नहीं मिलता कि महाराज से इसका प्रसंग छेड़ूं ॥

तप०—सो क्यों राजमहिषि ?—इस विषय में तो अवहेला करना किसी प्रकार उचित नहीं है। सुकुमारी राजकुमारी कृष्णा का यौवनकाल उपस्थित है यदि इस समय उसका विवाह न कर दोगी तो कब करोगी ? यह लो, महाराज इधर आते हैं।

अहि०—भगवति !—एकबेर महाराज का मुखकमल तो देखो—हे विधाता ! हिन्दूकुलकमलसूर्य्य को तू इस राहुग्रास से कब मुक्त करेगा ? हाय ! यह दुःख क्या सहा जाता है ! (रोती है)

तप०—देवि ! शान्त होओ इस समय आपको इतना चंचल होना उचित नहीं है। महाराज आप की यह अवस्था देख कर कितने दुखित होंगे सो आपही विचारें न !

अहि०—भगवति ! महाराज की यह दशा देख कर क्या और जीवित रहने की इच्छा होती है। हे विधाता !

हमने किस जन्म में कौन पाप किये थे जो तू हमें इतना कष्ट दे रहा है ? (रोती है)

तप०—(स्वगत) अहा ! क्या पतिव्रता स्त्री पति का दुःख देख कर स्थिर रह सक्ती है ? (प्रकाश) महिषी ! अब आप तनिक हट कर खड़ी हो जाँय और किञ्चित् शान्त होकर महाराज से भेट करें (हाथ धर कर) आइये हम दोनों जनें साथही एक कोने में खड़ी हो जायँ (आड़ में दोनों खड़ी हो जाती हैं)

(नौकर के सहित राजा भीमसिंह का प्रवेश)

राजा—रामप्रसाद !—

नौकर—महाराज !—

राजा—ये कई एक पत्र सत्यदास को दे आ और देख उन्हें कहना कि इन सभों का उत्तर आजही भेज देवें ।

नौकर—जो आज्ञा महाराज ।

राजा—जो जो उत्तर जिसे जिसे देना होगा सो हमने प्रत्येक पत्र के पीठ पर लिख दिया है ॥

नौ०—जो आज्ञा महाराज ।

राजा—(स्वगत) हे विधाता ! क्या इसी को लोग राजभोग कहते हैं ? ॥

तप०—(आगे बढ़ कर) महाराज ! चिरञ्जीवतु ।

राजा—(प्रणाम करके) भगवति ! चिरकाल के उपरान्त

आपके चरणकमल का दर्शन करने से हम जैसे सुखी हुए सो कैसे कहें ! राजमहिषी कहां हैं ? वे यहां दिखाई नहीं पड़तीं !

तप०—जी महाराज, वे अभी यहां थीं और अब आतीही होंगी ॥

राजा—भगवति ! आप इतने दिवस लों कहां थीं ?

तप०—जी, मैं तीर्थपर्य्यटन और यात्रा करती फिरती थी महाराज का तो सर्व प्रकार कुशल है न ?

राजा—हां देखतीही हो । भगवान एकलिङ्ग के प्रसाद और आपके आशीर्वाद से राजलक्ष्मी अभी तक तो इसी राजगृह में हैं परन्तु इसके उपरान्त रहेंगी या नही सो कहना कठिन है ॥

तप०—महाराज ऐसा क्या कहते हैं मन्दाकिनी क्या कभी हिमाचल परित्याग करती हैं । कमला इस राजभवन में त्रेतायुग पर्य्यन्त से अवस्थिति करती हैं । शरद् काल के चन्द्र की नाईं पुन: विपत्तिरूपि मेघ से मुक्त होकर अपनी शोभा से पृथ्वी को शोभित करती हैं यह विपुल राजकुल क्या कभी श्रीभ्रष्ट हो सकता है आप ऐसी बात कदापि चित्त में न विचारें ।

(अहिल्या देवी का पुन: प्रवेश)

आइये राजमहिषी आइये ।

अहि०—(राजा का हाथ धर के) नाथ ! इतने दिनों के उपरान्त जो आपने अन्तःपुर में पदार्पण किया तो यह इस दासी का परम सौभाग्य है ॥

रा०—देवि ! हम तुम्हारे सन्मुख कितने अपराधी हैं यह विचारने ही से हम अत्यन्त लज्जित हैं किन्तु क्या करें हम किसी प्रकार स्वेच्छाकृत दोषी नहीं हैं । आओ प्रिये बैठो (तपस्विनी से) भगवति ! आप भी आसन ग्रहण कीजिये (सब बैठते हैं) ।

(नौकर का पुनः प्रवेश)

नौकर - धर्म्मावतार ! मन्त्रीजी ने इस पत्र को श्रीमान् की सेवा में भेजा है ।

राजा—क्या है देखें पत्र पढ़ के) आह ! इतने दिनों के उपरान्त जान पड़ता है कि यह राज्य कुछ काल के लिये निरापद हुआ ।

(नौकर का प्रस्थान)

अहि०—नाथ यह कैसे हुआ ?

रा०—महाराष्ट्र अधिपति के सङ्ग एक प्रकार सन्धि होने को बातचीत हो रही है उसने इस पत्र में यह स्वीकार किया है कि वह तीस लक्ष मुद्रा पाने से स्वदेश को

लौट जायगा । हे देवि ! यह सम्वाद राजा दुर्योधन की नाईं मुझे हर्ष और शोक साथही देता है । प्रबल शत्रुदल ने जो यह प्रदेश त्यागा यह हर्ष का विषय है किन्तु जिस कारण से उसने यह देश परित्याग किया उसे स्मरण करने से एकक्षण भी प्राणधारण की इच्छा नहीं रहती ! (दीर्घनिश्वास लेकर) हाय ! हाय ! भुवनविख्यात शैलराज के वंशोत्पन्न होकर भी एक दुष्ट जन, लोभी पामर के भय से हमें धन देकर देशरक्षा करनी पड़ी ! धिक्कार है हमको ! इससे बढ़कर हमारा और कौन सा अपमान हो सकता है ?

तप०—महाराज ! आप तो स्वयम् इन सब बातों के ज्ञाता हैं । देखिये द्वापर युग में चन्द्रवंशभूषण श्रीमहाराज युधिष्ठिरजी ने स्वयम् विराट् राजा के यहां सभासद के पद पर नियुक्त होकर काल व्यतीत किया है, और सूर्य्यवंशचूड़ामणि साक्षात् नल महाराज ने समय पड़ने पर सारथिपद ग्रहण किया है सो यह सब उस विधाता ही की लीला है—

राजा—हां—इसमें क्या सन्देह है ?

अहि०—यह केवल भगवान एकलिङ्गजी का अनुग्रह है जो महाराष्ट्र अधिपति ससैन्य अपने देश को लौट गया—

राजा—(कुछ मुस्कुराकर) देवि ! तुम क्या विचारती हो

कि उस नराधम ने हमारा सदैव के लिये परित्याग किया है? जहां बिल्ली एकबेर दूध को सुगन्ध पा जाती है तो क्या फिर उस स्थान को छोड़ना चाहती है? इसमें कुछ भो सन्देह नहीं कि जब उसका यह धन समाप्त हो जायगा तो पुन: आक्रमण करेगा।

तप०—महाराज! जो जगदीश्वर भूत भविष्य और वर्त्तमान का कर्त्ता है वही भविष्य में आपकी रक्षा करेगा, आप इस विषय में चिन्ता न करें।

अहि०—नाथ! यह जञ्जाल तो एक प्रकार निपटही गया। अब अपनी कृष्णा के विवाह का भी ध्यान कीजिये—

राजा—उसके लिये इतने व्यस्त होने की क्या आवश्यकता है?

अहि०—सो क्यों नाथ! इतनी बड़ी कन्या हो गई अब क्या उसे क्वारीही रखियेगा! (दूर नेपथ्य में वंशीध्वनि)

राजा—यह क्या? अहा! यह वंशी कौन बजाता है?

अहि०—(देखकर) यह देखो तुम्हारी कृष्णा अपने सखी के सङ्ग उद्यान विहार कर रही है।

तप०—आहा महाराज देखिये मानो वनदेवी अपने सह-चरीगण को साथ लेकर वनभ्रमण कर रही है।

अहि०—नाथ! आपकी क्या यह इच्छा है कि कोई पाखण्डी यवन आकर इस कमलिनी को इस राज सरोवर से उठाकर ले जाय?

राजा—ऐसा क्यों प्रिये ?

अहि०—महाराज दिल्लीश्वर अथवा और किसी यवनराज तक जनरवरूपी वायुसंयोग से इस पद्म की सुगन्धि पहुंचने पर क्या रक्षा की आशा हो सक्ती है ? क्या आप को अपनेही पूर्ववंश की महाराणी पद्मिनी देवी का वृत्तान्त विस्मृत हो गया ?

(दूर नेपथ्य में वंसीध्वनि)

राजा—आहा ! क्या मधुरध्वनि है ।

(नेपथ्य में गीत)

मुरलिया कपट चतुरई ठानी । कैसे मिलि गइ नन्द नँदन को उन नाहिंन पहिचानी ॥ इक वह नारि बचन मुख मीठे सुनत श्याम ललचाने । जाति पाँति की कौन चलावे वाके अङ्ग भुलाने ॥ जाको मन मानत है तासों सो तहई सुख माने । सूरश्याम वाके गुण गावत वह हरि के गुण गाने ॥ १ ॥

मुरली यह तो भली न कीन्ही । कहा भयो जो श्याम हेत सों अधरन पर धरि लीन्ही ॥ अँगुरी छुवत गह्यो इन पहुंचो कैसे दुरति दुराये । ओछो तनकहि में भहरानी तनकहिँ बदन लगाये ॥ जो कुल नेक धर्म्म की होती दिन दिन होती भार । सूरदास न्यारे भये हम ते डोलत नन्द-कुमार ॥ २ ॥

तप० - अहा हा हा !!! क्या सुधा की वर्षा है, महाराज मैं कभी २ ऐसा स्वर तपोवन के आकाश मार्ग में सुनती हूं और मुझे यही विश्वास था कि सुरसुन्दरियों के व्यतिरिक्त और किसी का ऐसा मीठा स्वर नहीं हो सकता।

रा०— अहा सोई तो, भला यह तो कहो कि कृष्णा की कितनी अवस्था हुई ?

अहि०—महाराज क्या आपको नहीं मालूम ? अबकी वर्ष कृष्णा ने पन्द्रहवें में पैर धरा है।

तप० - महाराज इस कलिकाल में स्वयम्बर की प्रथा तो उठही गई नहीं तो आपकी इस कृष्णा के पाणिग्रहण के लोभ से अबलों सहस्रों राजा आकर उपस्थित हुये होते।

राजा—(दीर्घश्वास लेकर) भगवति! इस भारतभूमि में क्या अब वह श्री है? इस देश के पूर्व समय के वृत्तान्तों को स्मरण करके यह किसी प्रकार विश्वास नहीं होता कि हम मनुष्य हैं। जगदीश्वर क्यों हमारे प्रति इतना प्रतिकूल हो गया कुछ कहा नहीं जाता। हाय! हाय! जैसे कोई खारी तरङ्ग किसी मीठी नदी के जल में प्रवेश करतेही उसके स्वाद को नष्ट कर देती है उसी प्रकार इस दुष्ट यवनदल ने भी इस देश का सर्वनाश

कर डाला। भगवति ! देखें ईश्वर कब इस आपत्ति से हमारी निवृत्ति करता है।

अहि०—हा ! अदृष्ट ! अब क्या वह समय है। स्वयम्वर समारोह तो दूर रहे इनदिनों जिस राजकुल में सुन्दरी कन्या जन्म लेती है उस कुल की मानरक्षा करनी अत्यन्त कठिन हो जाती है।

तप०—सो सत्य है। प्रभो! तुम्हारी इच्छा। महाराज भारत-भूमि की यह अवस्था कुछ बहुत दिनों तक न रहेगी। जिस पुरुषोत्तम ने इस सागरनिमग्ना वसुन्धरा को वाराहरूपधारण कर उद्धार किया था वे क्या इस पुण्य भूमि को चिरकाल लों भूल जायेंगे ? अद्यावधि चन्द्र सूर्य्य का उदय होता है, अब भी एक पाद धर्म्म वर्त्तमान है।

राजा—जो कुछ भाग्य में है सो होगा। देवि ! तुम कृष्णा को एकबार यहां बुलाओ तो, बहुत दिन बीत गये मैंने पुत्री को भली प्रकार देखा नहीं।

अहि०—मैं अभी बुला लाती हूं।

तप०—महिषी आपके जाने की क्या आवश्यकता है, मैंही जाती हूं।

अहि०—(उठकर) नहीं भगवति ! मेरे रहते आप क्यों जायँगी।

राजा—(देखकर) लो किसी को भी जाना न होगा । यह देखो कृष्णा स्वयम् इधर चली आती है।

तप०—महाराज, अहा ! आपका कैसा उत्तम सौभाग्य है। महिषी आपको भी मैं शतशः धन्यवाद देती हूं जो आपने ऐसा दुर्लभ रत्न प्राप्त किया है । अहा ! आपने साचात् उमा को गर्भ में धारण किया है! पूर्व जन्म में आपने कितना पुण्य किया था सो कुछ कहा नहीं जाता ।

महि०—(बैठकर और नेत्र डबडबाकर) भगवति ! अब यह आशीर्वाद दीजिये कि यह पुत्री सुख से रहे इसका रूप लावण्य सचरित्र और विद्या बुद्धि देखकर मेरे मन में क्या २ कल्पना उठती है मैं क्या कहूं।

(कृष्णाकुमारी का प्रवेश)

आओ पुत्री आओ । बेटी, क्या तू भगवती कपालकुण्डला को नहीं चीन्हती ?

कृष्णा—मां ! भगवती के श्रीचरण के दर्शन अनेक दिनोपरान्त हुये हैं अतएव इन्हें प्रथम चीन्ह न सकी (प्रणाम करके) भगवति ! आप इस दासी का अपराध क्षमा कीजिये ।

तप०—वत्स चिरसुखिनी हो (रानी से) महिषी। जब मैं

तीर्थयात्रा को गई थी तब यह प्रफुल्लित कमलिनी केवल कलिका मात्र थी।

रा०—बैठो पुत्री बैठो, तू उस उद्यान में क्या करती थी बेटी?

कृष्णा—(बैठकर) मैं उस गुलाब के वृक्ष में जल देकर उस गान का अभ्यास कर रही थी जो मैंने आज सीखा है आपने बहुत दिनों से मेरे उद्यान में पदार्पण नहीं किया सो आज एकबेर चलिये; अहा! वहां जो अनेक प्रकार के फूल फूले हैं उन्हें देखकर आप अत्यन्त प्रसन्न होंगी।

अहि०—यह कौन फूल है बेटी?

कृष्णा—मां, यह गुलाब है इसे तुम्हारे लिये उद्यान से लेती आई हूं (माता के हाथ में देती है)

राजा—पूर्व समय में यह पुष्प इस देश में नहीं था जिस सर्प से यह पुष्परूपी मणि प्राप्त हुआ है उसी के विष से यह भारतभूमि प्रतिदिन दग्ध होती है (दीर्घश्वास लेकर) इस कुसुमरत्न को दुष्ट यवन लोगही इस देश में लाये (दूर दुन्दुभि की ध्वनि होती है)

सब—(चकित होकर) यह क्या?

राजा—रामप्रसाद!

(नेपथ्य में) आया महाराज।

(भृत्य रामप्रसाद का प्रवेश)

राजा—देख तो यह दुन्दुभिध्वनि क्यों होती है।

भृत्य•—जो आज्ञा महाराज। (जाता है)

राजा · देखें, यह कौन सी नई विपत्ति उपस्थित हुई! क्या महाराष्ट्र अधिपति सन्धि अस्वीकार कर पुनः युद्ध में प्रवृत्त हुआ? (उठकर) हा! क्या इस समय ऐसीही मङ्गलध्वनि भारतवासियों के कर्णकुहर में प्रवेश करेगी? सुनते हैं कि किसी २ सागर में अनवरत रात्रि दिन आंधी चलाही करती है तो क्या इस देश की भी सोई दशा हो गई है? हाय! हाय!!

(भृत्य का पुनः प्रवेश)

क्या समाचार है?

भृत्य·—महाराज सब कुशलमङ्गल है। जयपुराधिपति राजा जगतसिंह राय ने किसी विशेष कार्य्य के निमित्त श्रीमान् के समीप दूत भेजा है।

राजा—हां—बड़ो कुशल। हमने समझा कि न जाने कोई दूसरी नवीन विपत्ति आई—जयपुराधिपति तो हमारे परम आत्मीय हैं। जगदीश्वर न करे कि कहीं उन्होंने विपत्ति में पड़कर हमारे पास दूत भेजा हो (तपस्विनी

से) भगवति ! अब हमें विदा करो (रानी से) हमें पुन: राजसभा में जाना पड़ा ।

अहि० –(दीर्घनिश्वास ले कर) जीवितेश्वर – इस दासी का इतना सौभाग्य कहां कि क्षणमात्र के लिये भी नाथ के सहवास का सुख प्राप्त करूं !

राजा – देवि ! इस विषय में तुम्हारा आक्षेप करना वृथा है। हमने भली प्रकार विचार कर देखा है कि जिसे लोक नरपति कहते हैं वह वस्तुत: नरदास है। अतएव जिसे इतने लोगों को सन्तुष्ट करना है सो क्या क्षणमात्र को लिये भी विश्राम कर सकता है ?

(भृत्य के साथ जाते हैं)

अहि०—भगवति चलिये – मैं भी जाती हूं (कृष्णा से) आ बेटी, इस तेरे उद्यान में एकबेर आज हो आवें—

कृष्णा—चलोगी मां ? तो चलो—पिताजी मेरे उद्यान को देखने नहीं चले ?

(सब जाते हैं)

द्वितीय गर्भाङ्क ।

स्थान उदयपुर राजमार्ग ।

(पुरुषवेषधारण किये मदनिका का प्रवेश)

मद०—(स्वगत) अहा ! हा ! हा ! तुम्हारा नाम क्या है भई ! हमारा नाम ? हमारा नाम मदनमोहन ! अहा! हा ! हा ! ना ना; हंसने से बात बिगड़ जायगी (अपनी ओर देखकर) अच्छा तो हुआ ! कौन पहिचान सकता है कि मैं विलासवती की सखी मदनिका हूं ? हा ! हा ! हा ! दूर हो ! कहां तो विचारती हूं कि अब न हँसूगी कहां अपनेही आप हंसी चली आती है। सब से भारी धूर्त्तशिरोमणि तो धनदास है सो जब वही मुझे न चीन्ह सका तो अब कौन पहिचानेगा? विलासवती की यह इच्छा है कि यह विवाह किसी प्रकार न होने पावे—बस इतनेही में तो धनदास के मुख में कालिमा लग जायगी । देखें क्या होता है। सब विघ्नों की दादी तो मैंही हूं ! ! ! और राजा मानसिंह के नाम से एक जाली पत्र भी कृष्णा की ओर से लिख लिया है!! अहा ! हा ! हा ! इस कुशलता से मैंने पत्र लिखा है कि मानसिंह उसे पातेही कृष्णा के लिये अत्यन्त उत्सुक होंगे । जैसे शिशुपाल के हाथ

से रचा पाने के लिये रुक्मिनीदेवी ने श्रीकृष्ण महाराज को पत्र लिखा था वैसेही मैंने भी लिख दिया है; अब देखे हमारे इस शिशुपाल के भाग्य में क्या लिखा है? यह लो धनदास मन्त्री के साथ इधर चला आता है मैंने जैसे इस मन्त्री को विलासवती का हाल सुनाया है उससे जान पड़ता है कि इसका मन हमारे राजा की ओर से एकदम फिर गया है; देखें उसकी क्या बातचीत होती है। (आड़ में छिप जाती है)

(सत्यदास और धनदास का प्रवेश)

धन०—मन्त्री महाशय, यौवनावस्था में मनुष्य क्या नहीं करता? सो यदि हमारे नरपति भी जो कभी २ कन्दर्प के आधीन हो जाते हैं सो कुछ आश्चर्य नहीं है, महाराज की अवस्था अभी थोड़ी है। विशेषत:—अच्छा आपही कहिये कि बड़े २ घरों में क्या २ नहीं होता?

सत्य०—हां सो ठीक है। किन्तु हम सुनते हैं कि जयपुराधिपति किसी विलासवती नामक बारवधू के इतने बश में हैं कि—

धन०—हा! हा! यह आप क्या कहते हैं! भ्रमर क्या कभी किसी पुष्प के बस में हुआ है?

सत्य—हम ने सुना है कि यह विलासवती कोई सामान्य पुष्प नहीं है।

धन०—(मन में) सो तो झूठ नहीं है, उसे देखने से क्या चित्त स्थिर रहता है ? (प्रकाश) जी आप को यह किसने कहा, वह एक सामान्य स्त्री है, उस का क्या, आज है कल नहीं।

सत्य०—आप नहीं जानते, हमारी राजकुमारी कृष्ण महाराज भीमसिंह की जीवन स्वरूप है हमें किसी प्रकार विश्वास नहीं होता कि वे यह सब हाल पाने पर किसी प्रकार इस विवाह में सम्मत होंगे।

धन०—ऐसा क्या ? क्या यह बात महाराज के सुनाने योग्य है ?

सत्य०—सो सत्य है—यह बात निस्सन्देह कहने योग्य नहीं है ? किन्तु जो बात दस कानों में पहुँच रही है उस की शतसहस्र जिह्वा को कौन रोक सकता है ? इस विवाह की बात उठने पर लोक क्या क्या कहेंगे और सुनेंगे कौन कह सकता है।

धन०—भला—मैं यह पूछता हूं कि चन्द्रमा में कलङ्क कह कर क्या कोई उस की उपेक्षा करता है ?

सत्य०—जी नहीं, किन्तु यह कलङ्क वैसा तो नहीं है ? यह तो राहुग्रास है ? इस से आप के नरपति के श्री की सम्पूर्ण रूप से विलुप्त होने की सम्भावना है।

धन०—(स्वगत यह तो बड़ी दिक्कत हुई; अथवा दिक्कत

किस बात की ? इस में भी तो हमाराही उपकार है। महाराज यदि इस सारिका को पिंजरा खोल कर उड़ा देवें तो फिर और कौन पावेगा ? मैं तो फंदा लगाये बैठा ही हूं।

सत्य०—आप ने इस का उत्तर नहीं दिया ?

धन०—जी—देता हूं मैं यह विचारता था कि जब ऐसे तुच्छ विषय पर आप को इतना विराग हुआ है तो मैं महाराज को इस आशय का एक पत्र लिखता हूं कि वे पत्र पढ़ते ही उस दुष्टा को देश निकाला दे देवें। फिर तो मैं समझता हूं कि और कोई आपत्ति न रहैगी ?।

सत्य०—जी हां इस की अपेक्षा और उत्तम परामर्श क्या होगा ? यदि राजा जगतसिंह यह कार्य्य करें तो फिर इस विवाह में और कोई बाधा न रहेगी।

धन०—ली, वे करेंगे क्यों नहीं ? तांबे के बदले में सुवर्ण कौन न ग्रहण करेगा ?

सत्य०—तो हम इस समय विदा होते हैं। आप भी घर जाकर विश्राम कीजिये, सायंकाल को पुनः महाराज से साक्षात् भेंट होगी।

(मंत्री जाते हैं)

धन०—(स्वगत) हमारे महाराज की, हम देखते हैं, विलक्षण प्रसिद्धि हो रही है! अच्छा है इस जनप्रसिद्धि

को किसी प्रकार शान्त करना उचित नहीं है और फिर यदि किया भी चाहें तो कैसे कर सकते हैं क्योंकि इसकी गति महानदी के गति के तुल्य है—प्रथम तो पर्वत से झरने की नाईं थोड़ा २ जल गिरता है, फिर एक छोटा सा जलाशय हो जाता है, तदुपरान्त प्रवाह हो कर क्रम से धीरे धीरे वेगवान होता है, तब और और सोतों से मिल कर महाकाय धारण करता है। ठीक इसी प्रकार जनरव की भी दशा है (दूर से मदनिका को देख कर) अहा! हा! यह सुन्दर बालक कौन सा है? यह कुछ पूर्वपरिचित सा जान पड़ता है इसे कहीं पर देखा है (प्रकाश) अजी तुम ज़रा इधर तो आना—

मद०—(आगे बढ़ कर) कहिये क्या आज्ञा है?

धन०—तुम्हारा क्या नाम है?

मद०—जी मेरा नाम मदनमोहन है।

धन०—वाह! जान पड़ता है कि तुम्हारे माता पिता ने ऐसा रूप देख कर तुम्हारा नाम मदनमोहन रख दिया है—तुम यहां क्या करते रहते हो?।

मद०—जी मैं राजगृह में लिखना पढ़ना सीखता हूं।

धन०—मुक्ताफल की आशा ही से लोग समुद्र में गोता मारते हैं। राजगृह तो अर्थ रत्नाकर ही ठहरा। तो क्या

'तुम ऐसे स्थान में रह कर केवल लिखना पढ़ना ही सीखते हो? क्यों, क्या तुम्हारे देश में पाठशाला नहीं है? अच्छा जाने दो यह तो कहो कि तुमने राजकुमारी कृष्णा को कभी देखा है?

मद०—जो देखा क्यों नहीं? जो चन्द्रलोक में वास करता है क्या उसे अमृत देखना बाकी रहता है?

धन०—वाह! वाह अच्छा कहो तो तुम्हारे देखने में राजकुमारी का स्वरूप कैसा है?

मद०—अहा! भला क्या मेरी इतनी सामर्थ्य है कि मैं उस अपूर्व सौन्दर्य का वर्णन कर सकूं यह भी क्या विलासवती का स्वरूप है?

धन०—ऐं किसका स्वरूप है?

मदन०—क्यों आप के कान में खूंट पड़ा है? विलासवती, विलासवती!—सुना।

धन०—ऐं! विलासवती कौन?

मद०—विलासवती कौन? आप नहीं जानते? अहाहा!

धन०—(स्वगत) अरेरेरे उसका नाम इस दुष्ट ने कहां से सुना (प्रकाश) हम भला उसे कैसे जानें?'

मद०—हम से झूठी चलाकी मत करो आप जो जो बातचीत मंत्री से कर रहे थे मैं सब सुन रहा था।

धन०—(स्वगत) इस बात के अधिक छेड़ने में कुछ फल

न निकलेगा (प्रकाश) (धीरे से) देखो भद्र मदन-मोहन ! तुमने जो सुना सो सुना किन्तु किसी दूसरे से इसका हाल मत कहना सुना ।

मद०—क्यों ? इस में क्या हानि है ?

धन०—न भई देखो तुमको कुछ मिठाई खाने को देते हैं ये सब राज काज की बातें हैं, तुम को इस से क्या प्रयोजन है !

मद०—(कुछ रुष्ट होकर) तुम तो हमें कुछ पागल जान पड़ते हो; क्या तुमने मुझे निरा लड़का ही समझ लिया है कि मैं मिठाई देख कर भूल जाऊंगा ?

धन०—तो अच्छा कहो भाई तुम्हारा सन्तोष क्या पाने से होगा ?

मद०—अच्छा तुम्हारे हाथ में जो यह अँगूठी है सो हमें देदो इसे पाने से फिर हम किसी से कुछ न कहेंगे ।

धन०—क्योंजो अभी तक तो तुम हमें पागल बताते थे और अब तो तुम्ही पागल जान पड़ते हो, भला तुम इसे लेकर क्या करोगे ? यह क्या किसी को देने का पदार्थ है ?

मद०—अच्छा तो रहने दो हम राजमहिषी के पास जाते हैं । (जाना चाहती है)

धन०—अरे भाई ज़रा ठहरो १ बात तो सुन लो यह तुम

दुष्ट होके क्यों चले ? ज़रा बात तो सुन जाओ (स्वगत) इस बात के फैलने से सभी व्यर्थ हो जायगा। तो अब क्या करूं और यह अमूल्य अँगूठी कैसे दूं, अब तो देना ही पड़ा—हाय २ ! यह अँगूठी कितने परिश्रम से महाराज से पाया था; अच्छा अब सोचने से क्या ?

मद०—यह क्या ? आप रोते हैं क्या ? अहा हाहा !

धन०—(स्वगत) देखो तो इस लड़के ने हम को ठगा ! छी छी ! अब क्या करूं ? दे दूं—अच्छा कार्य्य सफल होना चाहिये फिर तो महाराज से न जाने क्या २ लूंगा (प्रकाश) यह लो भाई देखो यह भेद किसी पर न खुले ॥

मद०—(अगूठी लेकर) बहुत अच्छा तो मैं जाता हूं।
(आड़ में खड़ी हो जाती है)

धन०—(स्वगत) दुरदुष्ट ! हतभाग्य ! न जाने किस दुष्ट का मुह देख कर आज प्रातः काल को उठा था, अब क्या, चलो घर चलें (जाता है)

मद०—(आगे बढ़ कर) (स्वगत) अहा हा हा ! धनदास का दुःख देख कर बड़ी हँसी आती है । अहा हा हा ! बचा जैसा धूर्त था वैसा ही उसने फल पाया। अभी क्या हुआ है इसे यथोचित शिक्षा न दूं तो मेरा नाम मदनिका नहीं ! तो अब क्या करूं ? एक वार

मदनिका उदयपुर में पुरुष का भेष धरकर बड़ी चातुरी से वह अंगूठी धनदास से लेती है॥

स्त्रीवेष करके राजकुमारी कृष्णा से भेट करूं पर अपने को क्या बताऊंगी ? (कुछ सोच कर) हां हां ठीक है, मरुदेश के महाराज मानसिंह की दूती कहूंगी। अहा हा हा। [जाती है।

तृतीयगर्भाङ्क ।

(स्थान उदयपूर राजउद्यान)

(अहिल्या देवी और तपस्विनी का प्रवेश)

तप॰—महिषी ! यह परम आल्हाद का विषय है। जयपुर के राजवंश में भगवान अंशुमालि का एक महातेजोमय अंशस्वरूप है। अतएव इसमें कुछ सन्देह नहीं कि महाराज जगतसिंह कृष्णकुमारी के उपयुक्त पात्र हैं।

अहि॰—हां ! यह तो अवश्यही स्वीकार करना होगा ॥

तप॰—मैं सुनती हूं कि इन महाराज की अवस्था अभी छोटी है और यह अत्यन्त धर्मपरायण और विद्यानुरागी पुरुष हैं ॥

अहि॰—आपके आशीर्वाद से यह सब सत्य होवे क्योंकि प्रचण्डवायु कमलिनी को छिन्न भिन्न कर देती है किन्तु मलय समीरण से उसकी शोभा द्विगुण हो जाती है, गुणहीन स्वामी के हाथ पड़ने से क्या स्त्रियों की शोभा

रहती है (कुछ सोच कर) क्या आश्चर्य है, भगवती मैं इस कण्वा के विवाह के लिये कितनी व्यग्र थी सो क्या कहूं, किन्तु अब यह विचार कर कि इसका विवाह हो जायगा और यह मेरे पास से चली जायगी मेरा मन अन्दर से रो उठता है – (रोती हैं)

तप०– आहा ! माता की आत्मा ऐसी ही होती है।

अहि०—भगवति ! मैं अपने इस हृदय सरोवर के पद्म को किसके हाथ में दूंगी ! इसे कौन उठाकर ले जायगा ! जिस सारिका को मैंने प्राण की नाईं इतने दिनों तक पालन किया उसे मैं कैसे दूसरे के हाथ दूंगी ! मैं इस जीवनाधार गृहमणि के चले जाने पर, भगवति कैसे जीती बचूंगी। (रोती हैं)

तप०—देवि ! ये सब विधाता के नियम हैं। जहां २ कन्या हुई हैं तहां २ यह यातना सहनीही पड़ी है। देखिये, गिरीशमहिषी मेनका तो तीन दिन भी अपनी उमा का चन्द्रानन न देखने पाई थीं। सो इसकी चिन्ता करना वृथा है। चलिये अब हमलोग अन्तःपुर को चलें। जान पड़ता है कि महाराज अब तक राजसभा से उठे होंगे।

अहि०—जो आज्ञा—तो चलो। (दोनों जाती हैं)

(कृष्णाकुमारी और मदनिका का प्रवेश)

कृष्णा० – क्या कहती है दूति ? तेरा यह हाल सुन कर मुझे बड़ा भय होता है । तू इतना क्लेश सह कर यहां आई है ? ।

मद०—राजनन्दिनि ! जैसे पाले हुए पक्षी के पिंजड़े से उड़ जाने पर सब बनैले पक्षी उसके पीछे पड़ जाते हैं उसी प्रकार मेरी भी दशा हुई । किन्तु आपका चन्द्र-वदन देखकर मैं अपना सब दुःख इस क्षण भूलगई हूं।

कृष्णा०—अच्छा दूति ! तुम्हारे मरुदेशाधिपति ने मेरे पिता के पास दूत न भेज कर तुझे मेरे पास क्यों भेजा ?

मद०—राजनन्दिनी ! आप अत्यन्त बुद्धिमती हैं, आप तो जानतीही हैं कि जो जिससे प्रेम रखता है वह उसका मन बिना पाये क्या किसी कार्य्य में कभी हाथ देता है ?

कृष्णा०—(हँस कर) क्यों ? तेरे महाराज क्या मुझ से प्रेम रखते हैं ?

मद०—राजनन्दिनि ! हमारे महाराज आप से प्रेम रखते हैं या नहीं यह क्या पूछती हो ? हमारे महाराज तो रात्रिदिन केवल आपही को स्मरण किया करते हैं आपही के नाम की माला जपा करते हैं । उनका चित्त क्या किसी और कार्य्य में लगता है ?

कृष्णा०—क्या आश्चर्य है। उन्होंने तो मुझे कभी देखा भी नहीं। फिर क्या कारण है कि वे मुझ पर इतने अनुरक्त हैं? अच्छा दूति! कह तो तेरे महाराज के के रानियां हैं?

मद०—राजनन्दिनि! हमारे महाराज का विवाह अभी तक हुआही नहीं उनकी यह प्रतिज्ञा है कि आपके अतिरिक्त वे किसी दूसरे का पाणिग्रहण न करेंगें।

कृष्णा०—हां! यह सत्य है?

मद०—राजनन्दिनि! भला मैं क्या आप से मिथ्या भाषण करती हूं! प्रथम महाराज ने आपका स्वप्न में दर्शन किया तदुपरान्त लोगों से आपके गुणों की प्रशंसा सुनते २ वे मानो एक प्रकार उन्मत से हो गये हैं।

कृष्णा०—देखो दूति!—तुझे हमारी सपथ, सच कह तेरे महाराज देखने में कैसे हैं?

मद०—राजनन्दिनी! उनके रूप का वर्णन मैं आप को कैसे सुनाऊं मैंने तो इन नेत्रों से वैसा स्वरूपवान् दूसरा पुरुष देखाही नहीं। आहा! उनका स्वरूप स्मरण करतेही चित्त अन्दर से लहर उठता है आहा! क्या वर्ण है! क्या शरीर का गठन है! मानो साक्षात् कामदेव हैं। मैं अपने साथ महाराज की तस्वीर लेती आई हूं—यदि आप देखा चाहेंगी तो मैं किसी

समय लाकर दिखला दूंगी. आप उसे देखते ही जान जायगी कि महाराज का कैसा स्वरूप है।

कृष्णा०—(स्वगत) इस दूती का कथन क्या सत्य है ? होना भी सम्भव है। (प्रकाश) अच्छा दूति ! तू फिर किसी समय आकर मुझ से बात चीत कीजियो अब तो मैं जाती हूं मेरी सखियां सरोवर पर मेरे आसरे बैठी होंगी ॥

मद० – जो आज्ञा—

कृष्णा·—(कुछ दूर जाकर) देख भूलियो मत, तुझ से हमको बहुत कुछ बात करना है ॥ (जाती है)

मद०— स्वगत । लोक विलासवती को अत्यन्त रूपवती कहते हैं किन्तु जो कहीं महाराज इस नारी रत्न को देख पावैं तो फिर क्या उनका चित्त और कहीं लगे। आहा ! ऐसा स्वरूप क्या इस पृथ्वी तल पर कहीं है फिर गुण भी तो वैसाही है, "सोनी और सुगन्ध" इसीं में दीख पड़ता है (कुछ सोच कर) जो हो इसका मन एक वेर तो राजा मानसिंह की ओर फेरना हो चाहिये, नदी एक वार समुद्राभिमुखी होने से क्या फिर किसी ओर फिरती है ? (पुन: सोच कर) इसमें कोई सन्देह नहीं कि राजा मानसिंह का दूत अत्यन्त शीघ्र आनेवाला है वे क्या इस पत्र को पा कर

निश्चिन्त रहेंगे ? यह देखो महाराज भीमसेन इधर चले आते हैं तो मैं इस वृक्ष की आड़ में खड़ी हो जाऊं। (आड़ में खड़ी होती है)

(राजा, अहिल्यादेवी और तपस्विनी का पुनः प्रवेश)

तप०—महाराज ने राजदूत का नाम क्या बतलाया ?

राजा - उसका नाम धनदास है वह पुरुष अत्यन्त गुणवान और बहुदर्शी है और स्वयं राजा जगतसिंह भी अत्यन्त गुणी पुरुष हैं, और यश भी वैसाही है ॥

तप०—महाराज, जो सच पूछिये तो आप पर भगवान एकलिङ्ग की असीम कृपा कहनी चाहिये। यह देखिये क्या आश्चर्य घटना है ! कि उन्होंने रघुकुलतिलक श्रीरामचन्द्रजी को सुन्दरी जानकीजी के पाणिग्रहण की नाईं स्वयं उपस्थित कर दिया है। इससे अधिक कहिये और क्या आनन्द का विषय होगा।

राजा—यह सब आपही के आशीर्वाद का कारण है।

तप०—मेरी यह इच्छा है कि इस विवाह के कुशलपूर्वक समाप्ति के उपरान्त मैं पुनः तीर्थ यात्रा करने जाऊंगी तो अब इसमें क्या विलम्ब है ? शुभकार्य को शीघ्रही करना उचित है।

अहि०—नाथ ! तो अब इस शुभकार्य्य में अधिक विलम्ब करने का क्या प्रयोजन है ? हमारी कण्वा—(रोती है)

राजा—(हाथ धर कर) प्रिये ! इस मंगलकार्य्य के उपलक्ष में क्या तुम्हारा रोदन उचित है ?

अहि०—प्राणेश्वर ! मैं अपने हृदयनिधि को कैसे किसी पराये के हाथ में समर्पण करूंगी ! (रोती है)

राजा—(दीर्घ निश्वास छोड़ कर) देवि ! विधाता के लेख को कौन खण्डन कर सकता है विचारो तो तुम पहिले कहां थीं और अब कहां हो ! विधाता की सृष्टि इसी प्रकार चलती है । सैकड़ों कुसुमलता और सहस्रों फलवृक्ष लोग एक उद्यान से दूसरे उद्यान में ले जाकर लगाते हैं और वे फल फूल से शोभायमान होते हैं ॥

(नेपथ्य में गीत)

राग गौरी ।

आवासोत्सुकपक्षिण: कलरुतं क्रामान्तवृक्षालयान्
कान्ताभाविवियोगभीरुरधिकं क्रन्दत्ययङ्कातर: ।
चक्राङ्गोमधुपा: सरोजगहनं धावन्त्युलूकोमुदं
धत्तेचारुगताङ्गतो रविरसावस्ताचलं चुम्बति ॥१॥

गाढंप्रौढाङ्गनाभि: सुरततमन: सन्मदोत्सारिताद्यं
मुग्धाभि:स्वस्तनैश्चंरतिसमरभयंचिन्तयन्तीभिरेवम्।
पान्थानामङ्गनाभि:ससलिलनयनंशून्यचित्ताभिरुच्चैं
कष्टंदृष्टोस्तशैलंभृशमजयदयंमण्डलश्चन्द्ररश्मे: ॥२॥

राजा—आहा।

अहि०—महाराज, मैं अपनी इस कोकिला के वन परि-
त्याग करने पर क्या जीती रहूंगी? (रोती है)

तप०—महिषि! आप इतनी उद्विग्न न होइये, देखिये
आपके खेद करने पर महाराज अत्यन्त विषण्ण होते हैं॥

(कृष्णा का पुन: प्रवेश)

राजा—आओ पुत्रि; आओ।

कृष्णा०—पिताजी, मां यह क्या कर रही हैं, मां तुम रोती
क्यों हो?

अहि०—(कृष्णा को गोद में लेकर) बेटी! तू क्या इतने
दिनों पर अपनी इस दु:खिनी मां को छोड़ चली है
मेरा और कौन है बेटी! जो मुझे मां कह के बुलावे-
गा? (रोती है)

कृष्णा०—सो क्या मा? तुम्हें छोड़ कर मैं कहां जाऊंगी?
(रोती है)

राजा - भगवति, मोहस्वरूप पुष्प का कण्टक क्या कुछ ऐसा वैसा होता तीक्ष्ण है।

तप०—जी इसमें क्या सन्देह है? इसी कारण तो पूर्वकाल में अनेक महर्षि लोग इस सांसारिक जाल को परित्याग करके वनवासी हो गये हैं॥

(एक भृत्य का प्रवेश)

राजा—क्या समाचार है रामप्रसाद ?

भृत्य० - धर्म्मावतार, मरुदेशाधिपति राजा मानसिंह राय ने श्रीमान के समीप एक दूत किसी कार्य्य के लिये भेजा है॥

राजा—(स्वगत) राजा मानसिंह ने हमारे पास दूत क्यों भेजा है? (प्रकाश) अच्छा जा सत्यदास को कह कि वे उस दूत का यथोचित सत्कार करें और हम भी शीघ्रही आते हैं।

भृत्य०—जो आज्ञा महाराज। (जाता है)

राजा—प्रिये! चलो हम अन्तःपुर को चलें हमें पुनः राजसभा में जाना हुआ॥

कृष्णा०—(स्वगत) जो उस दूती का कथन सत्य है तो जान पड़ता है कि यह दूत मेरेही लिये आया है। देखें पिताजी क्या स्थिर करते हैं॥

अहि०—चलिये (तपस्विनी से) भगवति आप भी चलिये।

(सब जाते हैं)

सदनिका—(हाथ में चित्र लिये आगे बढ़ कर) आहा राजमहिषी का शोक देख कर तो छाती फटी जाती है! ठीकही है यदि ऐसी पुत्री से माता पिता स्नेह न करेंगे तो करेंगे किस्से?। यह नया दूत किस देश से आया सो मैं ठीक न जान सकी चलूं देखूं तो क्या बात है? मेरे मन में आता है कि यह दूत राजा मानसिंह का भेजा है आहा! परमेश्वर करे ऐसाही हो। यहां से चल कर अब पुनः पुरुषवेष धारण करूं जो तो यह मानसिंह का दूत हुआ तब तो आज धन-दास का विना सर्वनाश किये न छोड़ूंगी। आहा! हा! जो लोग स्त्रियों को अबोध कह कर घृणा करते हैं वे यह नहीं जानते कि स्त्रियों का जन्म शक्तिकुल में है, जो महादेव तीनों लोक को एक पल मात्र में नष्ट कर सकते हैं उन्हें भी भगवती ने अपनी कुशलता से अपने पदतल में दबा दिया आहा! हा! स्त्रियों की बुद्धि के आगे क्या किसी की बुद्धि चलती है, देखनाही तो है कि आज धनदास की कितनी बुद्धि है और मेरी कितनी चतुरता है यह देखो पुनः राजनन्दिनी इधर लौटी आती हैं, अब ले लिया है, अब क्या—सुख के

देखनेही से जान पड़ता है कि प्रेमवृक्ष ने अपना अंकुर जमा लिया है यदि ऐसा न होता तो क्षण भर में यह मेरे लिये इतना व्याकुल क्यों हो जाती है ! अब इसे चित्रपट देखाना चाहिये देखूं उसे देख कर क्या भाव उत्पन्न होता है । हा ! हा !! इसमें तो महाराज मानसिंह के एक भी गुण नहीं है, पर क्या हुआ ? काठ की बिल्ली भी चूहे धरने को बहुत है ।

(कृष्णा का पुनः प्रवेश)

कृष्णा०—दूति, तू क्या मुझे खोजती थी ? मैंने सुना है कि तेरे महाराज ने कोई दूत भेजा है, मैं समझती थी कि तू मुझ से हास्य करती थी ॥

मद०—राजनन्दिनि, भला ऐसा भी हास्य होता है ! हमारे सरीखे लोगों की क्या सामर्थ्य जो विना समझेही ऐसा कह सकें ॥

कृष्णा०—देखो दूति, मैं देखती हूं कि इस विषय में कुछ न कुछ विषम विवाद उठा चाहता है, तूने क्या नहीं सुना है कि जयपुर के राजा ने भी मेरे लिये एक दूत भेजा है ?

मद०—राजनन्दिनि, तो क्या इस से हमारे महाराज डर जांयगे ! यदि आप की अनुमति हो तो वे जयपुर को एक क्षण मात्र में भस्मीभूत कर डालें ।

कृष्णा॰—(सहास्यवदन) तू तो सदाही अपने महाराज की प्रशंसा किया करती है अच्छा देखें क्या होता है।

मद॰ - राजनन्दिनी, जब स्वयं आप महाराज की ओर हैं तो फिर कौन उनका साम्हना कर सकता है?

कृष्णा॰—(सहास्य) देखो दूति, पारिजात पुष्प के लिये इन्द्र और यदुपति में युद्ध तो आरम्भ हो गया, अब देखें कौन जीतता है। अच्छा, तू अपने राजदूत से तो एक बार भेंट कर।

मद॰—जो आज्ञा (कुछ दूर जाकर और फिर लौट कर) राजनन्दिनि! मैंने जो कहा था कि मैं अपने महाराज का चित्रपट दिखाऊंगी सो यह देखिये (चित्र देकर) इस समय इसे अपने पास रखिये फिर मुझे लौटा दीजियेगा— (जाती है)

कृष्णा॰—क्या आश्चर्य है, राजा मानसिंह का वृत्तान्त सुननेही मात्र से मेरा चित्त इतना चञ्चल हो गया है, इसका क्या कारण है? (चित्रपट को देख कर) आहा! क्या अनूठा रूप है! कैसा अधर है, क्या मन्दमुसकान है, ऐसा स्वरूप क्या इस संसार में कहीं है, आहा! दूती ने जो कहा था सो सत्यही है, हाय! मेरे अदृष्ट में क्या लिखा है जो मेरा मन इतना चञ्चल हो गया है!—अब यहां ठहरना उचित नहीं कोई आकर देख

भदेलिका राजा मानसिंहको दूतीवनकर कृष्णाको मानसिंहकी तस्वीर दिखातीहै ॥

लेगा—अब घर चलूं वहां अकेले में चित्र को भली प्रकार देखूंगी, आहा! क्या चमत्कार—

(चित्रपट को देखती २ जाती है)

इति द्वितीयाङ्क।

तृतीयाङ्क।

प्रथम गर्भाङ्क।

(स्थान उदयपुर—राजगृह के सन्मुख)

(मरुदेश के दूत तथा [पुरुषवेषधारी] मदनिका का प्रवेश)

दूत॰—क्या आश्चर्य है! तो क्या इस पत्र की वार्ता सत्य है?

मद॰—जी हां, और नहीं तो क्या? राजकुमारी ने पत्र लिख कर प्रथम मुझे दिया, तब मैंने एक विश्वासपात्र को देकर आपके महाराज के पास भिजवा दिया।

दूत॰—जो हो, हमारे महाराज का अति सौभाग्य है यदि यह न होता तो क्या तुमारी सुकुमारी उन पर इतनी अनुरक्ता होतीं, आहा! विधाता की क्या अद्भुत लीला है। कोई तो महामणि के लिये अन्धकारमय खानि में प्रवेश करता है और किसी को वही मणि मार्ग में पड़ी मिल जाती है ये सब बातें बिना भाग्य के थोड़ेही

होती हैं। जब से महाराज ने यह पत्र पाया है तब से उनकी दशा तुम से क्या कहूं।

मद०—देखिये दूत महाशय, आप यहां अत्यन्त सावधानी से रहियेगा जिसमें इस पत्र का हाल किसी को यहां प्रकाश न हो नहीं तो राजनन्दिनी मारे लज्जा के प्राण त्याग कर देंगी।

दूत०—ठीक है—परन्तु क्या मैं पागल हूं, यह बात भी क्या प्रकाश करने की है ?

मद०—वह जो धनदास नामक जयपुर का दूत आया है उसे आप कदाचित् भली प्रकार नहीं चीन्हते।

दूत०—नहीं उसके संग हमारी कोई विशेष बातचीत नहीं हुई है।

मद०—क्या कहूं वह आपके महाराज की इतनी निन्दा करता है कि आप उस सुनें तो आग भड़क उठे।

दूत०—हां ?—

मद०—राजनन्दिनी इससे कितनी दुखी हैं मैं आप से क्या कहूं—एक बार तो उसे कुछ न कुछ शिक्षा अवश्य देना चाहिये।

दूत०—क्यों ? वह क्या कहता है ?

मद०—महाशय, वह जो जो बातें कहता है सो कहते मुझे अत्यन्त लज्जा आती है, वह लोगों में क्या कहता फि-

६२
मानसिंहकादूतहड्डा
लण
गुप्तपत्रसेसा-
वधानकरती
है॥

रता है कि महाराज मानसिंह तो एक भ्रष्टा स्त्री के दत्तक पुत्र मात्र हैं और वे मरुदेश के प्रकृत अधिकारी नहीं हैं इत्यादि,—मैं क्या कहूं॥

दूत॰—हां ऐसा! उसकी इतनी सामर्थ्य! क्या कहूं मैं हद ब्राह्मण हूं नहीं तो इसी क्षण उसका मस्तक काट कर रख देता॥

मद॰—महाशय, इतना क्रोध करने का समय नहीं है यदि वाक्यवाणही से उसका कुछ दण्ड कर दिया जाय तो उत्तम है नहीं तो और कोई अत्याचार करना इस समय ठीक न होगा।

दूत॰—अच्छा मैं इसी समय राजमंत्री के पास जाता हूं, तदुपरान्त जो निश्चय होगा सो किया जायगा। शृगाल हो कर सिंह की निन्दा! यह क्या किसी प्रकार सह्य है? (जाता)

मद॰—(स्वगत) वाह! क्या झमेला खड़ा कर दिया है! जगदीश्वर ऐसा करे कि इसमें राजनन्दिनी कृष्णा को कोई व्याघात न होवे वाह, यह भी तो एक बड़ा आश्चर्य है कि मैं एक वेश्या की सहचरी हूं बन के पक्षी की नाईं स्वेच्छाधीन हूं, कभी संसार पिंजर में बद्ध नहीं हुई; परन्तु सुकुमारी राजकुमारी की प्रकृति देख कर मेरा मन कैसा हो गया है? सत्य है लज्जा

श्रीर सुशीलता ही तो स्त्री जाति का प्रधान भूषण है। आहा!।

(धनदास का प्रवेश)

कहिये महाशय प्रसन्न तो हैं न ?

धन०—कौन! मदनमोहन है। कहो अच्छे तो हो न? अजी तुमने वह अंगूठी का किया ?

मद०—जी आपसे कहने में मुझे बड़ी लज्जा आती है! और आप भी कदाचित् सुन कर प्रसन्न न होंगे।

धन०—क्यों, क्यों, प्रसन्न क्यों न होंगे ?

मद०—अच्छा तो सुनिये, इस नगर में मदनिका नामक एक अत्यन्त सुन्दरी स्त्री है; उससे मैं अत्यन्त प्रेम रखता हूं, उसी ने वह अंगूठी मुझ से ले ली॥

धन०- छि! छि! ऐसा अमूल्य रत्न क्या कोई वेश्या को देता है? तुमारी तो नितान्त बालकों की सी बुद्धि है। छि! छि! और फिर तुम इतनी छोटी अवस्था में ऐसे २ लोगों के साथ रहते हो?

मद०—देखिये अभी आप ने कहा था कि आप अप्रसन्न न होंगे, तो फिर अब अप्रसन्न क्यों हुये ?

धन०—(स्वगत) यह भी ठीक है। हम अप्रसन्न क्यों हों? (प्रकाश) हा हा हम तो हँसी करते थे, जो हो तुम तो भाई कोई विलक्षण रसिक पुरुष जान पड़ते हो ?

अच्छा भई यह तो कहो तुम्हारी वह मदनिका कहां रहती है ?

मद॰—जी उसका घर नगर के बाहर है !

धन॰—(स्वगत) इस स्त्री के घर का पता लगने पर न होगा तो कुछ ले दे कर अंगूठी ले ली जायगी और जो यों न देगी तो औरही कोई उपाय किया जायगा (प्रकाश) हां कहां बताया भई ?

मद॰—जी इसी नगर के बाहर।

धन॰—यह तो बताओ कि वह स्त्री देखने में तो सुंदरी है न ?

मद॰—जी और नहीं तो क्या कुछ ऐसी वैसी है। यह देखिये राजा मानसिंह के दूत मंत्री के साथही साथ इधर चले आते हैं।

धन॰—भली स्मरण कराई भई, हमने तुम्हें जो जो बातें अन्तःपुर में कहने को कहीं थीं वे सब तो कह दीं न ?

मद॰—जी, भला आप के काम में क्या मैं कभी अवहेला कर सकता हूं ?

धन॰—तुम में जितने गुण हैं उनकी गणना भला क्या मैं एक मुख से कर सकूं हूं।—हां यह तो कहो कि तुम्हारी उस मदनिका का स्थान कहां है।

मद॰—उसके लिये आप इतने व्यस्त क्यों होते हैं ? न

होगा एक दिन मैं ही आप को अपने साथ ले चल के उससे परिचय करा दूंगा! तो अब मैं इस समय जाता हूं (स्वगत) देखें अब इसके भाग्य में क्या लिखा है। (जाती है)

धन०—(स्वगत) बिना अँगूठी को फिर पाये मेरा मन किसी प्रकार स्थिर नहीं होता। वह अनुमान दस सहस्त्र मुद्रा की है! सो क्या यों ही छोड़ दूं! आहा कैसे २ भुलावों से उसे महाराज से लिया था कि उसे स्मरण करतेही नेत्रों में जल भर आता है! सो बिना किसी बड़ी भारी आपत्ति के क्या कोई सहज मेरे हाथों से उसे ले सकता था? अच्छा पहिले उस मदनिका के घर का पता तो लगा लूं फिर देखा जायगा, धनदास की चतुरता क्या योंही जायगी?

सत्यदास और मानसिंह के दूत का प्रवेश)

सत्य०—यह देखिये धनदास महाशय भी यहीं मिल गये, तो चलिये अब राजसभा को चलें।

दूत०—यही न राजा जगतसिंह के दूत हैं?

सत्य०—जी हां।

दूत०—(धनदास से) महाशय! हम और आप दोनोंही इस देश में एक अमूल्य रत्न की आशा से आये हैं! इसमें सन्देह नहीं कि हम दोनों विपची हैं परन्तु ऐसा होने

से हमलोगों को परस्पर क्या कोई असद् व्यवहार करना उचित है ?

धन०—जी नहीं ऐसा क्या कभी हो सकता है ?

दूत०—अच्छा तो मैं आप से यह पूछता हूं कि आप जो निरन्तर मरुदेशाधिपति की निन्दा किया करते हैं यह क्या आप के योग्य कर्म्म है ?

धन०—यह आप क्या कहते हैं—यह बात आप को किसने कही ?

दूत०—महाशय, बिना पवन के बहे क्या वृक्षपल्लव कभी आपस में लड़ते हैं ?

धन०—जान पड़ता है कि आप की इच्छा मुझ से विवाद करने को है ?

दूत०—आप के संग विवाद करने से मुझे क्या लाभ है ? परन्तु हां आप को इस दुष्कर्म का प्रतिफल अवश्य दिया जायगा इस में सन्देह नहीं। आप के राजा वेश्यादास हैं, नाचना, गाना, मटकना इत्यादि विद्या में परम निपुण हैं तो क्या वे राजेन्द्रकेशरी महाराज मानसिंह की तुलना कर सकते हैं अथवा राजकुमारी कृष्णा के उपयुक्त पात्र हैं ?

धन०—(सत्यदास से) आप सुनते हैं (कान पर हाथ धरके दूत से) ठाकुर क्या कहूं, एक तो तुम वृद्ध, दू-

सरे ब्राह्मण नहीं तो इसी चण तुम्हें इसका प्रतिफल दिये विना न छोड़ता ।

दूत०—चल तेरे जैसे प्रतिफल देनेवाले वहुत देखे हैं !

सत्य० - आप दोनों महाशय शान्त होइये - इस वृथा के वाक् युद्ध में क्या प्रयोजन है, विशेषतः इस स्थल में आप लोगों को इस प्रकार असौजन्य प्रकाश करना क्या उचित है ?

धन०—जी हां, सो ठीक है, किन्तु आपही विचार कर देखें कि मेरा इसमें क्या अपराध है ? यही तो विवाद करते हैं ।

(वलेन्द्रसिंह का प्रवेश)

वले०—यह क्या ? आप लोगों में यह घोर द्वन्द्वयुद्ध क्यों उपस्थित है ? इस परस्पर युद्ध का क्या कारण ?

दूत०—जी नहीं, युद्ध क्यों होगा, मैं इन जयपुरी दूत महाशय को दो एक हितोपदेश की शिक्षा देता था ।

वले०—हां क्या हितोपदेश दिया ? ज़रा मैं भी सुनूं, आप की क्या यह इच्छा है कि ये विवाह की आशा को तिलाञ्जलि दे कर स्वदेश को प्रस्थान करें !

धन०—हा!हा!हा जी, यही तो एक प्रकार जान पड़ता है ।

दूत०—जी, निस्सन्देह हमारे विचार में तो इन्हे यही करना उचित है महाशय, मान वड़ी वस्तु है "यशोधनानां हि यशो गरीयः"

वले॰—ह! ह! दूत महाशय, हम देखते हैं कि आप स्वयं चाणक्य के अवतार हैं। भला, हम सुनते हैं कि आप के मरुदेश में भगवती वसुन्धरा वन्ध्या नारी का अनुकरण करती हैं। सो यह तो बताइये कि आपके यहां राजकार्य्य कैसे चलता है?

दूत॰—वीरवर, क्या वन्ध्या स्त्री का स्वामी संसार परित्याग कर देता है?

वले॰—ठीक, ठीक। (धनदास से) कहिये महाशय आप ज़रा अपने अम्बर देश का तो वर्णन करिये, ज़रा सुनूं तो सही।

धन॰—महाराज, मेरी क्या सामर्थ्य जो मैं उसका वर्णन कर सकूं, यदि पंचमुख भी चाहें तो अम्बरदेश के सुख सम्पत्ति का यथार्थ वर्णन नहीं कर सकते। महाराज हमारा अम्बर प्रदेश साक्षात् अम्बर प्रदेशही है। वहां अङ्गनागण तारागण की नाईं सुन्दर हैं और जिस प्रकार मेघ में सौदामिनी और बिन्दु होते हैं उसी प्रकार हमारे राजभण्डार में हीरे और मोतियों का ढेर लगा रहता है तिस पर हमारे महाराज तो फिर स्वयं चन्द्र हैं और—

दूत॰—ठीक है, चन्द्र की नाईं कलङ्की हैं।

वले॰—अहह! क्या कहा धनदास!

धन०—जी और क्या कहूं? उलूक तो किसी प्रकार सूर्य का तेज नहीं सह सकता और जो क्षुधा के मारे रात्रि के समय खोड़र में से निकला भी तो क्या किसी प्रकार नेत्र खोल कर प्रकाशमय चन्द्र को देख सकता है? तेजोमय वस्तु मात्रही उसके आंख में गड़ती है।

बले०—अहा हा!! कहिये दूत महाशय, अब? (नेपथ्य में यन्त्रध्वनि होती है) अरे यह क्या? (नेपथ्य में बाजा बजता है)

सत्य०—यह स्वयं महाराज राजसभा में आते हैं, चलिये हमलोग भी वहीं चलें—

(रक्षक का प्रवेश।)

रक्षक०—(हाथ जोड़ कर) बीरवर, गणेश गंगाधरशास्त्री नामक एक दूत महाराष्ट्रपति के यहां से आकर बाहर सिंहद्वार पर खड़ा है उसके लिये क्या आज्ञा होती है?

बले०—क्या!—महाराष्ट्रपति के यहां से? अच्छा उसे राजसभा में ले जाओ हम भी आतेही हैं। चलिये तो हम सब एक बेर राजसभा में चलें। (सब जाते हैं)

(मदनिका का पुनः प्रवेश।)

मद०—(स्वगत) अब तो मेरा काम बन गया:, अब इस नगर में रह कर विलम्ब करने से क्या प्रयोजन है?

मेरी कुशलता से राजनन्दिनी राजा मानसिंह पर इत-नी अनुरागिणी हो गई हैं कि वे जगतसिंह का नाम सुनते ही जल उठती हैं और मेरे पत्र को पाकर मा-नसिंह ने भी दूत भेजा है तो अब यहां रह कर और क्या होगा ? चलो—किन्तु राजनन्दिनी को छोड़ते स-मय अन्दर से जी कैसा २ हुआ जाता है—आहा, ऐ-सी सुशीला सुन्दरी तो संसार में न कहीं देखी न सु-नी –हे परमेश्वर देख मैं जो इस वन में अग्नि लगा चली हूं ऐसा न हो कि यह दावाग्नि हो कर इस क-मलनयनी हरिनी को कष्ट दे। हे प्रभो ! तुही रचक है ! चलूं मुझे घनदास से पूर्व जयपुर पहुंचना है।

(जाती है)

द्वितीय गर्भाङ्क।

(स्थान उदयपुर का राजउद्यान।)

तपस्विनी का प्रवेश।

तप॰—(स्वगत) क्या आश्चर्य है ! मैंने श्रीभगवान गोविन्द राज के मन्दिर में कृष्णकुमारी के विषय में जो कुस्वप्न देखा था सो क्या यथार्थही हुआ ? राजा मानसिंह और राजा जगतसिंह दोनोंही ने जो राजनन्दिनी के

पाणिग्रहण के लिये इस नगर में दूत भेजा है तो अब क्या ये दोनों मतंग विना युद्ध किये कभी शान्त होंगे? कभी नहीं इन के युद्ध करने पर क्या इस बनस्थली की सामान्य दुर्दशा होगी? हाय! हाय!! विधाता की क्या विडंवना है। (दीर्घनिश्वास लेकर) दीनबन्धो! तुम्हो सत्य हो. मैं देखती हूं कि कृष्णा भी महाराज मानसिंह पर अत्यन्त अनुरागवती हो गई है, जो हो यह सब वृत्तान्त तो एक वार राजमहिषी से अवश्यही कहना उचित है।

(जाती है)

(कृष्णाकुमारी का प्रवेश।)

कृष्णा—(स्वगत) वह दूती पची होकर उड़ गई क्या? मैंने उसके खोज में न जाने कहां २ सखियों को भेजा परन्तु कहीं भी उसका पता न लगा (दीर्घ निश्वास लेकर) क्या आश्चर्य है न जाने वह मुझ पर कौन सा मोहनी मंत्र पढ़ गई है कि तब से मेरा जी कहीं लगताही नहीं, जो हो अरे अज्ञान मन! तू क्यों इतना चंचल हुआ जाता है? स्वप्न भी क्या कभी सत्य हुआ है? पर क्या वह दूती सत्यही मुझे छल गई? यह भी कैसे कहूं, उसके राजा का दूत भी तो आया है? (कुछ सोच कर) भगवती कपालकुण्डला को जो मैंने

अपने जी का हाल कह दिया सो क्या अच्छा किया ? परन्तु ऐसा रहस्य क्या किसी प्रकार चित्त में छिपाया जाता है, जैसे कीट कुसुमकली को तोड़ कर स्वयम् निकल आता है वैसेही यहभी है — यह देखो भगवती माता जी से बात चीत करती हुई ईधर चली आती हैं, मेरे जान मेरीही बात करती हैं हाय ! हाय !! क्या लज्जा की बात है माता जी सुनेंगी तो क्या कहेंगी ? मैं मा का क्या मुंह दिखाऊंगी ? न जाने विधाता ने क्या अदृष्ट लिखा है कुछ कहा नहीं जाता — चलूं इस समय संगीतशाला में जाऊं।

(जाती है)

(अहिल्या देवी के संग तपस्विनी का पुन: प्रवेश)

अहि०—क्या कहती हो भगवति ? आपने क्या यह वृत्तान्त स्वयं कन्या के मुख से सुना ?

तप०—जी हां—उन्ने आपही मुझ से कहा।

अहि०—क्या आश्चर्य है।—

तप०—महिषि ! युवती के हृदय मन्दिर की द्वारपालिनी लज्जाही है। उसका पराभव करना क्या सहज काम है ? मैं कितनी कुशलता से इस विषय में कृतकार्य हुई हूं सो आप को क्या कहूं।

अहि॰—आहा ! इसी कारण जान पड़ता है कि पुत्री को आज कल कुछ उदास देखती हूं ! अच्छा भगवती यह तो कहो कि हमारी कृष्णा राजा मानसिंह पर इतनी अनुरागवती कैसे हुई इसका कारण कुछ जानती हो ?

तप —राजमहिषि ! यह सब दैवघटना है ! देखो कमलिनी सूर्य्योदय होते ही खिल जाती है किन्तु क्यों उसका सूर्य्य पर इतना अनुराग है क्या कोई कह सकता है ?

अहि॰—सूर्य्योदय की उज्ज्वलकान्ति देख कर कमलिनी सूर्य्य के आधीन हो जाती है, किन्तु हमारी कृष्णा ने तो मानसिंह को देखाही नहीं—

तप॰—देवि ! हृदयरूपि चक्षु से मनुष्य क्या नहीं देख सकता विशेषत: भगवान कन्दर्प की जो लीला और कौतुक है सो आप क्या नहीं जानतीं ? क्या दमयन्ती सती राजा नल को अपने चर्म चक्षुओं से दर्शन कर उन पर अनुरागवती हुई थीं ? (चौंककर) अहा क्या मनोहर सुगन्ध है देवि ! देखो यह जो सुगन्ध वायु के साथ आकाश में फैल रहा है इस का जन्म किस पुष्प से है सो तो हम नहीं देख सकते किन्तु यह चित्त में प्रतीत होता है कि यह सुगन्ध जिस पुष्प का है वह अत्यन्तही सुन्दर और मनोहर है। जैसे यह सुगन्ध अपने जन्मदाता पुष्प के मनोहरता को प्रगट करता है उसी प्र-

कार महाराणी यशःस्वरूप सौरभ की भी रीति है। मरुदेशाधिपति राजा मानसिंह कोई साधारण यशो-हीन मनुष्य थोड़े ही है।

रहि०—हां सत्य कहती हो (नेपथ्य में वन्यध्वनि)

तप०—देखो राजमहिषी ! राजनन्दिनी के हृदय में जो भाव हैं वह स्वयं प्रकाश हो जाता है।

(नेपथ्य में गीत)

पिय बिनु नागिन कारी रात।
कबहुं जामिनी होत जुन्हैया डसि उलटी होइ जात॥
जन्त्र न फुरत मंत्र नहि लागत आयु सिरानो जात।
सूरश्याम बिनु विकल विरहिनी मुरि मुरि लहरैं खात॥

तप०—अहा ! ऋतुराज वसन्त के उपस्थित होने पर क्या कोई कोकिला को चुप रख सकता है वह अवश्यही अपने मन की कथा वनस्थल में रात दिन पञ्चमसुर में कहाही करती है। यौवन काल आने से मनुष्य जाति का हृदय भी किसी प्रकार स्थिर अथवा चुप नहीं रह सकता है।

रहि०—जी हो भगवती आपका यह कथन सुनकर मेरा मन कितना व्याकुल हो गया सो क्या कहूं। हाय ! हाय ! मेरे सरीखी हतभागिनी स्त्री क्या संसार में कोई होगी ? मुझे इस बात की बड़ी इच्छा थी कि

मैं पुत्री का विवाह भली प्रकार करूं किन्तु देखती हूं कि विधि की विडम्बना से सभी व्यर्थ हुआ चाहता है

(रोती है)

तप०—क्यों राजमहिषी ! कैसे व्यर्थ हुआ चाहता है ?

अहि०—भगवती आप क्या विचारती हैं कि महाराज मरुदेश के राजा को पुत्री देंगे ? प्रथम तो राजा मानसिंह के साथ उनका अत्यन्त सद्भाव नहीं है दूसरे जयपुर का दूत यहां पूर्वही आ चुका है।

तप०—ऐसा क्या ? जो धीवर प्रथम डुबकी लगाता है उसी को क्या सागर उत्कृष्ट मुक्ताफल देता है? यह क्या बात है ? महिषी ! कृष्णा आपकी कन्या है, आपकी इच्छा जिसे हो उसे दीजिये, इसमें आगे पीछे क्या ?

अहि०—(दीर्घनिश्वास लेकर) भगवती ! मेरा क्या इसमें वश है —अहा ! भगवती एकबार इधर तो देखो (आगे बढ़कर) आओ पुत्री आओ—

(कृष्णा का पुनः प्रवेश)

तुम्हारा मुख आज इतना उदास क्यों है पुत्री ?

कृष्णा—नहीं मां उदास क्यों होगा ?

अहि०—यह क्या ? तू रोती क्यों है ?

कृष्णा —(निरुत्तर होकर मां के गले से लिपटकर रोती है)

अहि०—पुत्री क्यों ? तुझे क्या अभाव है जो तू इतनी दुःखित होती है ?

तप०—(स्वगत) अहा ! इस व्रत में यह नवीन व्रती है सो अपने व्रत के उद्देश्य को न पाकर क्या यह स्थिर रह सकती है ?

अहि०—छी: ! छी: ! यह क्या बेटी ?

छाया मां मैंने क्या अपराध किया है जो तुम मुझे जल में बहा देने को उद्यत हुई हो ? (रोती है)

अहि०—क्या कहती हो पुत्री ? तुझे जल में क्यों बहावेंगे ? किन्तु पुत्री ! लड़कियां क्या सदा पिताओं के घर रहती हैं ? (रोती है)

तप०—वत्से ! पक्षिशावक क्या चिरकाल तक अपने घोंसले ही में रहकर अपना काल व्यतीत करते हैं ? देखो ये तुमारी माताजी हैं किस प्रकार पिता का घर परित्याग करके स्वामिगृह में रहती हैं। तुमको भी यही करना होगा।

छाया - भगवती—(रोती है)

अहि०—स्थिर हो पुत्री स्थिर हो रो मत (रोती है)

छाया—मां मुझको इतने दिन प्रतिपालन करके शेष में क्या वनवास दोगी ? (रोती है)

तप०– महिषी ये देखो महाराज इधर आते हैं, वे आप दोनों को ऐसी दशा देखकर अत्यन्त दुखित होंगे तो आप एक काम करें राजनन्दिनी को लेकर यहां से थोड़ा हट जावें।

अहि०—आओ पुत्री हमलोग चलें।

(अहिल्यादेवी और कृष्णा का प्रस्थान)

तप०—(स्वगत) मैं समझी थी कि अनिद्रा, निराहार, कठोर तपस्या ये सब संसारमायाशृङ्खल से मुक्ति दान देते हैं। सो क्या मनै वह मुक्ति पाई ? ऐसा तो किसी प्रकार चित में विश्वास नहीं होता। अहा! इन दोनों का शोक देखकर हृदय विदीर्ण हुआ जाता है। (दीर्घश्वास लेकर) हे विधाता इस मनुष्य के हृदय में जो बीज तूने रोपण किया है उसे निर्मूल करना क्या मनुष्य का काम है? विलापध्वनि सुनने से योगीन्द्र का भी मन चञ्चल हो उठता है।

(राजा भीमसिंह का प्रवेश)

राजा—भगवती! यहां रानी थीं न ?

तप०—जी हां वे यहीं थीं, जान पड़ता है कि वे आयाहो चाहती हैं।

राजा—उनसे हमको कोई विशेष बात कहना है। जान पड़ता है कि आपने भी सुना होगा कि मरुदेशाधिपति

राजा मानसिंह ने भी हमारी कन्या के पाणिग्रहण की इच्छा से हमारे निकट दूत भेजा है।

तप०—जी हां सुना तो है।

राजा—(दीर्घनिश्वास लेकर) भगवती! यह सब हमारे भाग्य की विचित्रता है!

तप०—ऐसा क्यों? महाराज! यह तो सर्वदा ही होता आया है।

राजा—भगवती! आप विरतपस्विनी हैं अतएव इस देश के लोगों का चरित्र विशेष रूप से नहीं जानतीं। इस विवाह के उपलक्ष से कितने २ उपद्रव उठेंगे क्या कोई गिन सकता है?

(अहिल्यादेवी का पुनः प्रवेश)

प्रिये! तुम्हारी कन्या का विवाह कुशलपूर्वक हो जाय ऐसा तो हमें किसी प्रकार विश्वास नहीं होता!

अहि०—क्यों नाथ?

राजा—क्या कहूं। इस विषय में महाराष्ट्राधिपति राजा मानसिंह के पक्ष पर होकर हमसे अनुरोध करता है कि—

तप० नरनाथ! तो राजनन्दिनी को राजा मानसिंहही को क्यों नहीं प्रदान कर देते? वे भी तो कोई सामान्य राजा नहीं हैं।

अहि०—जीवितेश ! इस दासी की भी यही प्रार्थना है।

राजा क्या कहती हो देवी? राजा जगतसिंह हमारे परम आत्मीय हैं तिसपर उनका दूत भी पहले आ चुका है तो अब हम क्या कहकर उसे निराश करें ? (दीर्घ-निश्वास लेकर) हे विधाता ! तूने यह जो प्रमाद रूपि अग्नि भड़काया है क्या वह विना रक्तस्रोत के शान्त होनेवाली है ?

अहि०—प्राणनाथ ! महाराष्ट्राधिपति जो इसमें हाथ देता है इसका क्या कारण है ? वह तो अपने देश पर जाने को उद्यत था न ?

राजा—देवि ! तुम उस नराधम का चरित्र भली प्रकार नहीं जानतीं। वह तो यह चाहताही है कि कोई न कोई बहाना उसके हाथ लगे।

तप०—अच्छा महाराज ! यदि आप इस विषय में सम्मत न हों तो महाराष्ट्राधिपति क्या करेगा ?

राजा—ऐसा करने से उसकी लुटेरू सेना देश में लूट मार आरम्भ कर देगी ! हाय ! हाय ! फिर क्या देश में कुछ बचेगा ? भगवती ! हमारी क्या अब वह अवस्था है जो हम ऐसे प्रबल शत्रु को पराजय कर सकेंगे ?

तप०—महाराज ! लक्ष्मी देवी की कृपा से आपको किस बात का अभाव है ?

महि०—(राजा का हाथ धर कर) नाथ ! इतना मत घबड़ाइये, जान पड़ता है कि भगवान एकलिङ्ग के प्रसाद से यह उद्वेग अति शीघ्र शान्त होगा।

राजा—महिषी ! तुम तो राजपुत्री हो क्या तुम नहीं जानतीं कि इस विवाह में हम जिसे निराश करेंगे वही म्यान से तलवार खींच लेगा ? प्रिये ! तुम्हारी कृष्णा क्या सती की नाईं अपने पिता का सर्वनाश करने आई है ? हाय ! हमने विधाता के निकट कौन सा पाप किया है जो वह हमसे इतना प्रतिकूल हो गया है ! हमारा ऐसा अमूल्य रत्न भी अग्नि होकर हमें दग्ध करने लगा है, यह हमें स्वप्न में भी विदित न था कि हमारे हृदय सेही हमारा सर्वनाश होगा।

महि०—(निरुत्तर होकर रोती है)

तप०—यह क्या ? महिषी आप क्या करती हैं ?

महि०—भगवती! यमराज क्या हमें भूल गये हैं? (रोती है)

तप०—महिषी ये क्या? वह आपके शत्रुओं को स्मरण करें। महाराज आज्ञा हो तो मैं अब अन्तःपुर को जाऊँ।

महि०—नाथ ! हमारी कृष्णा का इसमें क्या दोष है कहिये तो? हमारी पुत्री तो भला बुरा कुछ भी नहीं जानती, पुत्री ! तेरा जन्म इस अभागिनी के कोख से क्यों हुआ था ? (रोती है)

राजा—(हाथ धरकर) देवि ! हमारा यह अपराध क्षमा करो । हाय! हाय! मैं कैसा नराधम हूं हमारे सरीखा भाग्यहीन पुरुष हम जानते हैं कोई भी न होगा । ऐसा अमृत भी हमारे लिये विष हुआ! तो चलो प्रिये अब अन्त:पुर को चलें ! सूर्य्य भगवान भी अस्ताचल को चले (दीर्घनिश्वास लेकर) हे दिवसपते ! तुम्हें जो लोग इस राजकुल का आदि कारण कहते हैं सो क्या तुम भी इस दुःख से मलीन हो गये हो ?

[सब जाते हैं]

(कृष्णा का पुनः प्रवेश)

कृष्णा—घूमकर । स्वगत । अहा ! एक वह समय था और एक यह समय है ? मैं क्यों वृथा फिर यहां आई? यह सब क्या मुझे अब अच्छा लगता है (दीर्घनिश्वास लेकर) अहा ! मैंने इस मल्लिका पुष्प का आदर से वनविनोदिनी नाम रक्खा है । इस सुचारु शमी वृक्ष को सखी वाहकी बरा है । (चकित होके) यह क्या ? अहा ! सखी तुम क्या इस हतभागिनी का दु:ख देखकर दीर्घ निश्वास परित्याग करती हो? क्यों तुम तो चिरसुखिनी हो तुम्हारे खेद का क्या कारण है ! मलय समीर तुम्हारा एकान्त अनुगत है सदा हो तुम्हारे सङ्ग मधुरस्वर से प्रेमालाप करता है सो क्या तुम पराये का दुःख

बूझ सकती हो? क्या आश्चर्य है! (चिन्ता करकै) हाय! हाय! वह मायाविनी दूती किस कुलग्न में इस देश को आई थी! कुछ कहा नहीं जाता। क्या आश्चर्य्य है! मैंने जिसे कभी नहीं देखा, जिसका नाम कभी नहीं सुना, जिसके सङ्ग कभी वार्त्तालाप नहीं किया उसके लिये मेरा मन ऐसा चञ्चल क्यों हो रहा है? केवल उस दूती के कथन मात्र से मेरा मन इतना चञ्चल क्यों हो गया है? हा! मैंने क्यों वह चित्रपट देखा था? क्यों उस मनोहर मूर्त्ति को अपने हृदय कमल में स्थान दिया था? लोग कहते हैं कि मरुदेश वन्ध्यास्थल है, वहां वसुमती सर्वदा विधवा वेश धारण किये रहती हैं कुसुमादि रूपि कोई भी अलङ्कार धारण नहीं करतीं। किन्तु क्या आश्चर्य्य है! मेरे मन को तो वह देश नन्दन वन सा जान पड़ता है मुझे वह प्रदेश कैसा अच्छा लगता है वह मेरा मनही जानता है। (दीर्घनिश्वास लेकर चलो देखूं तो कि उस दूती का कुछ पता लगा या नहीं (घूमकर सचकित) यह क्या? यह उद्यान अचानचक इस प्रकार पद्मगन्ध परिपूर्ण कैसे हो गया! (डर के) क्या आश्चर्य्य है मुझ से चला नहीं जाता मेरा सर्वाङ्ग क्यों काँप रहा है। (नेपथ्य की ओर देखकर) अरे यह क्या? आ! आ!

आ! (मूर्छित होकर गिर पड़ती है)—आकाश में कोमल वाद्य सुनाई पड़ता है।

(तपस्विनी का शीघ्रता से प्रवेश)

तप०—(स्वगत) अरे सर्वनाश! सर्वनाश हुआ। (कृष्णा को गोदी में लेकर) अरे यह क्या? बड़े भाग्यों से मैं अचानचक इधर से चली जाती थी। उठो पुत्री उठो! यह क्या हुआ?

कृष्णा—(अचेत अवस्था में) देवि! आप इस मधुर वचन को फिर कहिये! मैं भली प्रकार सुन लूं। क्या कहा अहा! हा! "जो युवती इस महत् कुल के मान को अपना प्राण देकर रक्षा करती है सुरपुर में उसके आदर की सीमा नहीं है" अहा! इस अभागिनी के भाग्य में क्या यह सुख है?

तप०—यह क्या पुत्री? यह क्या कहती हो? (स्वगत) हाय! हाय! देखो तो विधाता की क्या विडम्बना है एक तो यह राक्षसी समय तिस पर कृष्णा का यह नवयौवन; क्या जाने किसकी दृष्टि—

कृष्णा—(उठकर सचकित) भगवती! आप यहां कैसे आईं?

तप०—क्यों पुत्री, यह क्या?

कृष्णा—(चारोंओर देखकर) क्या आश्चर्य है भगवती! मैंने जो अद्भुत स्वप्न देखा है उसे सुनकर आपको बड़ा विस्मय होगा।

कृष्णा का
पद्मनीकी इहां मे
मूर्छित होना
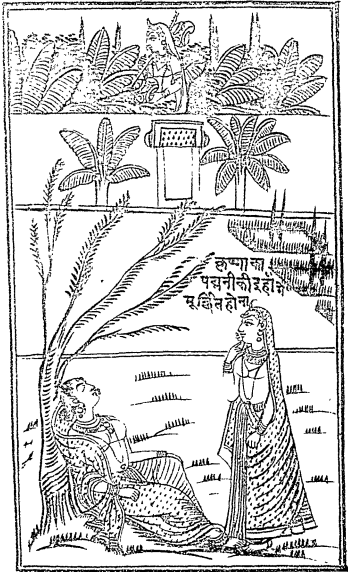
तप०—क्या स्वप्न पुत्री ?

कृष्णा—जान पड़ता है कि जैसे मैं किसी सुवर्ण मन्दिर में एक कमलासन पर बैठी हूं इतनेही में एक परम सुन्दरी स्त्री एक पद्म हाथ में लिये हुई मेरे सन्मुख आकर खड़ी हुई। खड़ी होकर बोली कि पुत्री तू मुझे प्रणाम कर मैं सम्बन्ध में तेरी माता हूं।

तप०—तब ?

कृष्णा—मैंने प्रणाम किया तो बोली - देख पुत्री जो युवती इस महत्कुल के मान को अपना प्राण देकर रक्षा करती है सुरपुर में उसके आदर की सीमा नहीं है। मैं इस कुल की वधू हूं मेरा नाम पद्मिनी है। तू यदि हमारे सरीखा काम करेगी तो हमारी सी यशस्विनी होगी।

तप०—तब ? तब ?

कृष्णा - आह ! भगवती आप मुझे सम्हालिये मेरा शरीर काँपता है।

तप०—क्या आपत्ति है ! चलो पुत्री तुम अन्तःपुर में चलो यहां कुछ काम नहीं। देखो बेटी मुझे जो तुमने कहा सो किसी दूसरे से न कहना (आकाश में कोमल वाद्य ध्वनि होती है)

कृष्णा—आहा ! भगवती यह सुनिये।

तप०—क्या आपत्ति है ! पुत्रि मैं क्या सुनूं ?

छाया—भगवती! क्या तुमने नहीं सुना? कैसी मधुरध्वनि है! आहा!

तप०—चलो बेटी यहां ठहरने का कुछ काम नहीं है तुम शीघ्र यहां से चलो।

(दोनों जाती हैं)

तृतीय गर्भाङ्क।

(स्थान उदयपुर का नगरद्वार)

(बलेन्द्रसिंह और कई रक्षकों का प्रवेश)

बले०—रघुवरसिंह –

प्रथम—(हाथ जोड़कर) क्या आज्ञा है, वीरवर!

बले० देखो तुम सब अत्यन्त सावधान रहो। आज किसी को भी इस नगर में प्रवेश करने मत दो।

प्रथम—जो आज्ञा महाराज - आपकी अनुमति बिना किस की ताकत है जो इस नगर में प्रवेश कर सके।

बले०—और देखो यदि महाराष्ट्राधिपति के डेरे में किसी प्रकार का गड़बड़ देखो तो उसी क्षण मुझे आकार सम्वाद दो।

प्रथम—जो आज्ञा।

बली॰ (देखकर स्वगत) यह महाराष्ट्र शृगाल क्या सामान्य धूर्त है? ऐसा लोभी, अहितकारी नराधम, चोर क्या कोई और है! किन्तु मानसिंह के सहित इसका अचानचक इतना मेल क्योंकर हुआ इसका कारण कुछ समझ नहीं पड़ता। (चिन्ता करके) कोई न कोई कारण अवश्य है नहीं तो वह ऐसा मनुष्य नहीं है कि वृथा क्लेश स्वीकार करे। कृष्णा का विवाह किसी से क्यों न हो, उसका विवाह होने से उसको क्या?

[प्रस्थान

(नेपथ्य में रण का बाजा बजता है)

द्वि॰रक्षक - कहो रघुवरसिंह—!

प्र र॰— क्या है भई।

द्वि॰र॰—तुमसे मैं एक बात पूछता हूं; तुम तो सदाही हमारे सेनापति वलेन्द्रसिंह के साथ रहते हो, राजकाज का वृत्तान्त जितना तुम जानते हो उतना और कोई नहीं जानता।

प्र॰र॰—हां, कुछ २ तो जानतेही हैं। अच्छा क्या पूछते हो? पूछो।

द्वि॰र॰—देखो भाई हमने सुना है कि इस महाराष्ट्राधिपति के सङ्ग हमारे महाराज का मेल हो गया था सो फिर जो यह आकर थाना देकर बैठा है इसका क्या कारण?

प्र०र०—क्या तुमने इसका हाल कुछ नहीं सुना ?

हि०र०—नहीं भई।

ठ०र०—क्या है भई ? इसका तो हाल हम भी कुछ नहीं जानते।

प्र०र०—मरुदेश के राजा मानसिंह और जयपुराधिपति जगतसिंह दोनों ने हमारी राजनन्दिनी के विवाह करने की आशा से दूत भेजा था।

ठ०र०—हां, सो तो जानते हैं तो इस विषय में महाराष्ट्र राज के हस्तक्षेप का क्या प्रयोजन है ?

प्र०र०—हमारे महाराज की पूर्णतया यही इच्छा है कि वे पुत्री का विवाह जगतसिंह से करें किन्तु इस राजा और जगतसिंह में चिरकाल से विवाद चला आता है इसकी इच्छा है कि महाराज अपनी राजकुमारी मानसिंह को प्रदान करें।

हि०र०—अच्छा भाई यदि यह विवाह का सम्बन्ध कराने आया है तो सङ्ग में इस सेना और शस्त्रों का क्या प्रयोजन है ?

प्र०र०—अहा ! हा ! इतना भी तुम नहीं समझते ? इसके सरीखा भिखारी क्या संसार भर में कोई है ? यह तो ऐसे झमेल मनायाही करता है, कुछ बहाना मिलना चाहिये फिर चाहे छल से चाहे बल से इसे अपनी भिक्षा की झोली भरने से प्रयोजन।

द्वि॰र॰ यह तो सत्य है, तो भला कुछ जानते हो कि हमारे महाराज ने क्या स्थिर किया?

प्र॰र॰—और क्या स्थिर करेंगे? जयपुर के राजपूत को विदा करने की अनुमति दे चुके हैं। और थोड़ेही दिनों में महाराष्ट्राधिपति से भगवान एकलिङ्ग के मन्दिर में भेंट करेंगे। इसके उपरान्त विवाह के विषय में क्या होगा सो नहीं कह सकते।

द्वि॰र॰—अच्छा भई तुम क्या समझते हो कि जयपुर के राजा इस पर चुप होकर बैठ रहेंगे?

प्र॰र॰—सो नहीं कह सकते। सुनते हैं कि राजा कुछ रण प्रिय नहीं हैं। तौभी राजपुत्र तो हैं इतना अपमान क्या सह सकेंगे?

द्वि॰र॰—यह देखो इधर दो मनुष्य कौन चले आते हैं?

प्र॰र॰—सब सावधान हो जाओ। जान पड़ता है कि मन्त्री महाशय आते हैं।

(सत्यदास और धनदास का प्रवेश)

सत्य॰—रघुवरसिंह—

प्र॰र॰—(हाथ जोड़ के) जी, क्या आज्ञा है?

सत्य॰—सब मङ्गल है न?

प्र॰र॰—जी हां।

सत्य॰—(धनदास से) अच्छा महाशय, आप जरा इधर आइये।

धन॰—मन्त्री महाशय ! वह बात क्या अच्छी हुई ?

सत्य॰—जी अब इस विषय को जाने दीजिये । महाराज इसमें कितने दुखी हैं सो आपही विचारिये न ! किन्तु क्या करें इसमें तो और कोई उपाय नहीं है ।

धन॰—जी हां यह बात तो ठीक है । पर हमारा तो सर्व नाश हुआ मैं किस कुलग्न में आप के देश में आया था कुछ कह नहीं सकता।

सत्य॰—क्यों महाशय ?

धन—क्यों महाशय क्या ? पहिले देखिये जो कुछ हमारे पास था सब कुछ इन लुटेरों ने लूट लिया फिर राजा मानसिंह के दूत से हमारा कितना अपमान हुआ सो तो आप भला प्रकार जानते हैं, और—

सत्य॰—महाशय जो हुआ सो हुआ उन सब बातों को भूल जाइये । अब कृपा कर यह अंगूठी ग्रहण कीजिये महाराज ने इसे आप को देने के लिये मुझे दिया है ।

धन॰—महाराज का प्रसाद शिरोधार्य है। (अंगूठी लेता है)

सत्य॰—महाशय आप अत्यन्त चतुर मनुष्य हैं । अतएव आपको बहुत कहना व्यर्थ है । आप महाराज जगतसिंह को इस विषय में शान्त होने का परामर्श देंगे, यह आपस के द्रोह का समय नहीं है । (चिन्ता कर के) देखिये यदि आप यह काम कर देंगे तो महाराज आपको भली प्रकार सन्तुष्ट करेंगे ।

सत्यदासधनदासकोअँगूठीदेकरविदाकरताहै॥

धन०—जो आज्ञा मैं अपने भर सक कसर न करूंगा । आगे जगदीश्वर के हाथ है ।

सत्य०—हमने राजकर्मचारियों को महाराज की आज्ञा भेज दी है आपको रास्ते में कोई क्लेश न होगा ।

धन०—तो मैं इस समय विदा होता हूं ।

सत्य०—जो आज्ञा - अच्छा आइये ।

धन०—(स्वगत) देखूं तो अंगूठी कैसी है (देखकर) वाह ! यह तो महारत्न है इसका मूल्य अनुमान एक लाख रुपया है ! वाह रे ! धनदास का भाग्य । मिट्टी छूने से सोना हो जाता है अहा ! हाहा ! जिसको विधाता बुद्धि देता है उसे सभी कुछ देता है (चिन्ता कर के) यदि महाराज यह कह कर अप्रसन्न होंगे कि तू इस विवाह में क्षतकार्य नहीं हुआ, तो हुआ करें; न होगा उन का राज्य छोड़ कर और कहीं जा बसूंगा । और क्या ! मुझे तो अब धन की कमी भी नहीं है । अहा हा ! बुद्धि के बल से धनदास धनपति है ! किन्तु यही एक बाधा है ऐसा होने से बिलासवती की आशा छोड़ना होगा । जिस स्मरके लक्ष में इतने दिन लौं अनेक वन पर्यटन किये उसे अब सहसा कैसे छोड़ जाऊं (विचार कर) क्यों ? छोड़ क्यों जाऊंगा ? क्या मैं एक वेश्या को न ठग सकूंगा ? अरे कितने लोग तो स्वर्ग-

कन्या अप्सराओं को वश कर लेते हैं और मैं क्या एक सामान्य वाराङ्गना का मन न हर सकूंगा ? अहा हा ! अच्छा देखें क्या होता है ?

[जाता है ।

प्र०र०—(आगे बढ़कर) तुम लोग क्या इसे चीन्हते हो ?

द्वि०र०—चीन्हते क्यों नहीं ? वही जयपुरी दूत है न ? आह! एक दिन रात को भाई इसने हम को जो कष्ट दिया सो तुम्हें क्या कहें ?

त०र०—क्या ? क्या ?

द्वि०र०—हम भाई पुरस्कार के लोभ से मदनिका नामक किसी स्त्री की खोज में इसके संग चले । सारी रात खोजते २ मर गये कहीं पता न लगा । अन्त को प्रातः काल घर लौटने के समय यह दुष्ट मुझे केवल चार गंडे पैसे हाथ धर के बोला क्या कि तुम मिठाई लेकर खाओ अहा हा !

प्र०र०—आहा हा ! जैसा काम वैसा इनाम (आकाश की ओर देखकर) आह अब तो प्रभात ही हो गया ।

(नेपथ्ये गीत)

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डं ।
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः ॥

उदयसहिमरीचिर्याति शीतांशुरस्तं।

हतविधिलसितानां हीविचित्रोविपाकः ॥ १ ॥

ह॰र॰—लो सुना। चले हमलोग चलें। (नेपथ्य में रण के बाजे बजते हैं)

प्र॰र॰—हां——चलो——। यह देखो एक दल और आया। [सब जाते हैं] ०

इति तृतीयोऽङ्कः।

चतुर्थोऽङ्कः।

प्रथमगर्भाङ्कः।

स्थान जयपुर—राजगृह।

(राजा जगतसिंह और मंत्री का प्रवेश)

राजा—क्या कहा मन्त्री? यह हाल तुम्हें किसने कहा?

मन्त्री—महाराज, धनदास आज तीसरे पहर या कल प्रातःकाल तक स्वयम् आजायगा, उसके मुंह से जब आप यह सब हाल सुनेंगे तो आप को विश्वास होगा।

राजा—क्या आपत्ति है। क्या हम तुमारी बात पर विश्वास नहीं करते? हम यह पूछते हैं कि यह हाल तुमने किस से सुना?

मन्त्री—महाराज, हमने किसी निज दूत ही के मुख से सुना है। वह अत्यन्त विश्वासपात्र है।

राजा—ऐसा ? तो राजा भीमसिंह ने यह विचारा है कि हमारा अपमान करके वे मानसिंह को कन्या प्रदान करें ?

मंत्री—कृपानिधान, मैंने सुना है कि राजा भीमसिंह तो आप पर बड़ा स्नेह रखते हैं किन्तु वे विचारे लाचार होकर अब ऐसा करने में प्रवृत्त हुये हैं। महाराज मैं तो पहिलेही यह सब बातें श्रीमान के सन्मुख निवेदन कर चुका हूं, किन्तु मेरे दुर्भाग्य से आपने उस समय धनदास ही के कथन पर ध्यान दिया।

राजा—आह! उस बीती हुई बात का अब सोच क्या ?

मंत्री—महाराज, इसमें क्या सन्देह है! किन्तु विचारने की बात है कि धनदास ही इस अनर्थ का मूल कारण है। उसने केवल स्वार्थ साधन के लिये इस राज्य का सर्वनाश किया!

राजा—क्यों ? क्यों ? उसका अपराध क्या है ?

मंत्री—मैं अब क्या कहूं! धनदास का चरित्र तो महाराज भली प्रकार जानते नहीं।

राजा—क्यों ? क्यों ? धनदास का इसमें क्या अपराध है ?

मंत्री—महाराज! राजकुमारी कृष्णा की प्रति मूर्ति उसने आप को क्यों आकर दिखलाया ? इसका कारण क्या आपने अभी तक नहीं जाना ?

राजा—क्यों ? क्या कारण है ? तुम्ही कहो ।

मंत्री—इसी विवाह के बहाने मे एक प्रपंच बढ़ा के अपना उदर पूर्ण करना बस यही कारण है और क्या ? महाराज ! उनके नाईं स्वार्थपर मनुष्य क्या संसार भर में कोई है ?

राजा—हां ! तभी वह इस विषय में इतना उद्योग करता था ? हम तो यह कुछ भी न समझे थे, अच्छा आने दो - अच्छा तो अब इस विषय में क्या कर्तव्य है कहो तो ?

मंत्री—महाराज मेरी अनुमति तो यही है कि इस विषय में मौन धारण करनाही उत्तम है ।

राजा—(कुछ क्रुद्ध होकर) क्या कहा मंत्री ? तुझे कुछ उन्माद हुआ है क्या ? ऐसा अपमान क्या कभी कोई सह सकता है ?—क्यों क्या हमारे पास धन नहीं है ? - सैन्य नहीं—अथवा बल नहीं है ?

मंत्री—महाराज, राजलक्ष्मी के अनुग्रह से श्रीमान् को किस बात की कमी है ?

राजा—तो फिर हमें शान्त होने को क्यों कहते हो ? मान की अपेक्षा क्या धन और जीवन अधिक प्रिय है ? छि! फिर ऐसी बात कभी मुहँ से मत निकालना—देखो प्रत्येक दुर्ग के अधिपतियों के पास तुम अभी जाकर

पत्र भेजो कि वे लोग पत्र पढ़ते ही अपनी २ सेना लेकर यहां आ उपस्थित हो और देखो—

मंत्री—जो आज्ञा महाराज—

राजा – तुमने जो उस दिन धनकुलसिंह का हाल कहा था, वह कौन है हमें भली प्रकार समझाओ।

मंत्री—महाराज वे मरुदेश के स्वर्गवासी महाराज भीमसिंह के पुत्र हैं किन्तु महाराज के लोकान्तर होने पर उनका जन्म हुआ है अतएव कोई २ लोग कहते हैं कि वे वास्तविक भीमसिंह के पुत्र नहीं हैं।

राजा—हां! मरुदेश का वर्तमान राजा मानसिंह तो गुमानसिंह का पुत्र है न? गुमानसिंह धनकुलसिंह का पितामह है वोरसिंह का छोटा भाई तो धनकुलसिंह ही मरुदेश का प्रकृत अधिकारी ठहरा।

मन्त्री—महाराज इस कलिकाल में अब क्या धर्माधर्म का विचार है? जिसकी लाठी तिसकी भैंस। कुमार धनकुलसिंह क्या अब राजसिंहासन पा सकते हैं?

राजा—क्यों? आवश्य पावेगा! हम उसे मरुदेश के सिंहासन पर बैठावेंगे। देखो, मन्त्री तुम शीघ्र जाकर पत्र लिखो। मानसिंह की इतनी बड़ी योग्यता हो गई कि वह हमारी बराबरी करे? अब देखना है कि वह अपना राज्य कैसे सम्हालता है!

मन्त्री—महाराज—

राजा—(कुछ उठ कर) बस, वृथा बकवाद से क्या लाभ है? जाओ।

मन्त्री—महाराज, मैं वृद्ध ब्राह्मण हूं—इस महत् कुल के प्रसाद से मैंने मनुष्यत्व लाभ किया है, श्रीमान् के स्वर्गवासी पिता—

राजा—वाह! क्या हम तुम्हें चीन्हते नहीं, मन्त्री तुमने क्यों अपना परिचय देना आरम्भ किया ?

मन्त्री—सो नहीं, सो नहीं, मेरा कहना यह है कि ऐसे भारी कार्य्य में सहसा प्रवृत्त होना उचित नहीं—

राजा—मन्त्री, मनुष्य का जीवन कुछ चिरस्थाई नहीं है किन्तु अपयश चिरस्थाई है, यदि हम यह अपमान सह जांय तो कायरों के स्थान में हमारी ही उपमा दी जायगी। धन, प्राण सब जाना स्वीकार है परन्तु यह कोई न कहे कि अम्बर देशाधिपति मरुदेश के राजा से डर गया। छि! छि! हमारे इस अपयश से मरना सहस्रगुण अच्छा है—अच्छा तो तुम जाओ।

मन्त्री—(दीर्घ नीश्वास लेकर) जो आज्ञा महाराज। (स्वगत) "यद्धात्रा जनभालपट्टलिखितं तन्मार्जितुम् कः क्षमः" हाय! हाय! दुष्ट धनदासही सब अनर्थों का कारण है!!! [जाता है

राजा—(स्वगत) अब तो यह दूसरा कुरुक्षेत्र आरम्भ हुआ, इतने दिनों तक राजभोग में मत्त था परन्तु अब परिश्रम करना पड़ेगा। तलवार भी तो चिरकाल तक स्थान में पड़ी पड़ी मलिन और कलङ्कित हो जाती है। (कुछ सोच कर) जो हो, धनदास को तो खूबही दण्ड देना चाहिए हमने जितने कुकर्म किये हैं सभों का शिक्षक यही दुष्ट है। ओ: इस दुष्ट की कैसी चमत्कारिक बुद्धि है! अच्छा देखें इस बार क्या होता है?

[प्रस्थान।

—***—

द्वितीय गर्भाङ्क।

स्थान विलासवती का घर।

विलासवती और मदनिका का प्रवेश।

विला०—वाह सखी! तेरी क्या विलक्षण बुद्धि है! धन्य है।

मद०—(कुछ हँस कर) सखी बड़ी विलक्षण कथा है मैं उदयपुर में जो जो काम कर आई हूं उसे स्मरण कर के मारे हंसी के पेट फूला जाता है अहा! ह! ह!—

विला०—सोई तो क्या आश्चर्य है धनदास क्या तुझको सचमुच ही नहीं पहिचान सका?॥

मद०—भला पहिचानही लेता तो क्या फिर अंगूठी देता?

विला०—भला सखी, तुझसे जो कोई पूछता था तो तू क्या परिचय देती थी ? ।

मद०—क्यों ? उदयपुर के लोगों को कहती थी कि मेरा घर जयपुर है और जयपुर के लोगों से कहती थी कि मेरा घर उदयपुर है और जहां दोनों देश के लोगों को देखती वहां जातीही न थी ।

विला०—वाह ! तेरी क्या विलक्षण बुद्धि है भई ! ।

मद०—हं ! हं ! राजमन्त्री, राजा मानसिंह का दूत औ राजकुमारी मैंने किसके संग बात चीत नहीं किया और कितने प्रकार के भेष बदले सो तुमसे क्या कहूं ।

विला०—सोई तो ! भला सखी ! राजकुमारी कृष्णा क्या बड़ी सुन्दरी है ? ।

मद०—अहा सुन्दरी सी सुन्दरी, सखी ! यह हाल न पूछो क्या कहूं ऐसा रूप लावण्य क्या पृथिवी में कहीं है ? (दीर्घनिश्वास लेती है)

विला०—यह क्या सखी तेरा मुख कुछ उदास सा क्यों हो गया है ? क्या उसने ऐसा तेरा मन मोह लिया है ? वाह वा गूंगी हो गई क्या सखी ?

मद०—सखी ! क्या कहूं राजनन्दनी कृष्णा का हाल स्मरण करके मन जैसे रो उठता है । अहा वो भोला मुख एक बार देखने से क्या फिर विस्मरण होता है ? ॥

विला०—क्या कहती हो, क्या ? वह ऐसी सुन्दरी है ! क्या आश्चर्य्य है ! आओ सखी हम यहां बैठ जाँय हमें राजकुमारी कृष्णा का हाल भली प्रकार सुनाओ ॥

मद०—क्यों उस का हाल सुनने से तुम्हारा क्या उपकार होगा कहो तो ? ।

विला०—क्या जाने भई तेरे मुख से उसकी बातें सुन कर मेरी ऐसी इच्छा होती है कि एक बार उदयपुर जाकर उसे देख आऊं।

मद०—सखी। जिस ने कृष्णकुमारी को नहीं देखा उसे विधाता ने नेत्र वृथाही दिये। अच्छा जाने दो यह तो बताओ कि महाराज इधर कै दिन से नहीं आये ?

विला०—(दीर्घ निश्वास ले कर) सखी यह हाल क्यों पूछती हो ? आज तीन दिन—

मद०—हां ! तो वे उस दिन से नहीं आये कि जिस दिन से धनदास जयपुर में आया। जान पड़ता है कि वे इस विवाह के विषय में अत्यन्त खिन्न है फिर होना ही चाहिये उनके दूत को तो मैंने खूबही ठगा; अहाहा ! धनदास इस जन्म में अब किसी के विवाह कराने का फिर उद्योग न करेगा, अहहाहा !

विला० अहहा। ऐसा ही तो जान पड़ता है।

मद०—देखो सखी जान पड़ता है कि आज महाराज

यहां आवेंगे कि आतेही होंगे—सो तूने यदि उन से आज पांव में हाथ लगवा के न छोड़ा तो मैं तुझसे जनम भर न बोलूंगी।

विला०—ओह ! भला यह कैसे होगा ? छी ! छी ! यह भी क्या हो सकता है ?

मद०—होगा क्यों नहीं ? बुद्धी होनेही से सब होगा ! अच्छा आओ न, तुम्हें हम मान करना अभिनय करके सिखा देवें। (बैठकर) मानो मैं मानिनी नायिका हो कर बैठी हूं तू नायक होकर आ और मुझे मना।

(मुंह फेर कर बैठ जाती है)

विला०—अहा हा ! वाह सखी वाह ! तुझे कितने रंग आते हैं ? अच्छा मैं अब क्या करूं ? बता।

मद०—(उठकर) क्या आपत्ति है ! नहो तूही मान करके बैठ मैं नायक हो कर मनाऊं।

विला०—(बैठकर) अच्छा लो मैं बैठ गई।

मद०—अब मान करो।

विला०—यह किया (मुंह फेर लेती है)

मद०—हे सुन्दरी ! तेरे मुखचंद्र को अभिमान रूपी राहु-ग्रास देख कर आज हमारा चित्त—

विला०—अहा ! हा !

मद०—छी ! छी ! छी ! यह क्या ? सब बिगाड़ दिया ! ऐसे समय क्या हँसना होता है ?

विला०—एलें, महाराज इधर आते हैं।

मद०—हां ! हां ! देखो सखी ! महाराज के आने पर कहीं इस प्रकार न हँस उठियो। मैं अब जाती हूं। इतने दिनोंपरान्त आज धनदास के सिर तोड़ने का भला जोग लगा।

[जाती है।

(राजा जगतसिंह का प्रवेश)

राजा०—(स्वगत) आज तीन दिन से यहां नहीं आये और आतेही कैसे? मुझे क्या सांस लेने का भी अवकाश था? इस तीन दिन में अनुमान नव्वे हजार सैन्य आकर इस नगर में एकत्र हुई है और धनकुलसिंह भी अनुमान आठ दस हजार लोगों को लेकर आता है; एक लक्ष वीर। देखें अब मानसिंह अपना राज्य कैसे बचाता है? जो हो इस घर में तो पुष्पधन्वा और पंचशर के अतिरिक्त दूसरे किसी अस्त्र की कथाही नहीं है यह भगवान कंदर्प की भूमि है; विलासवती कहां है? (प्रकाश) अरे क्या वसन्त आने पर कोकिला चुप रहती है (देख कर) यह देखो क्यों प्रिये ! तुम इतनी उदास हो कर आज क्यों बैठी हो? यह क्या इधर कई दिन न आने से तुम हम पर कुछ विरत हो गई हो? (निकट बैठ कर) देखो तुम किसी

प्रकार मन में यह मत विचारो कि हम जान बूझ कर तुम्हारे पास नहीं आये—क्या आश्चर्य है! तुम हम से बोलती क्यों नहीं? ये क्या? इतनी निस्तब्ध! तो यदि भई तुमको हम से न बोलना हो तो कहो हम चले जांय। मैं सहस्त्रों काम काज छोड़ कर तुम्हारे पास आया हूं और तुम चुप करके बैठी हो।।

विला०—जाओ न; मैं क्या तुम्हें रोकती हूं?

राजा०—क्यों प्रिये! हमने क्या अपराध किया है? जो तुम हम पर इतनी निठुर हो?।

विला०—सो क्यों महाराज? आप राजकुलचूणामणि ठहरे; तिसपर अब राजा भीमसेन के जवाई होंगे; मैं तो एक—

राजा—प्रिये! मैं देखता हूं कि तुम यथार्थही मुझ पर रुष्ट हो छि! यह क्या? तुम फिर चुप हो रही देखो जो तुम से इतना प्रेम रखता है उससे क्या इतना निठुर होना उचित है? (दहनो ओर देख कर) देखो प्रिये! ये तुम्हारी सारिका भी आज अपने सुक से मान करके बैठी है और वो अपने ठोर से उसके पैरों को छेड़ कर उसे मना रहा है मानों हमे इस बात की शिक्षा देता है कि तुम्हें किस प्रकार मनाना चाहिये तो आओ हम भी तुम्हारे पैर छूवें (पैर छूकर) लो तुम हमारा सब दोष अब क्षमा करो।

विला०—(चंचल हो कर) क्या करते हैं महराज ? छि ! छी ! मैं तो केवल आपसे परिहास करती थी कि महाराज स्त्री का मान रखते हैं कि नहीं !

राजा०—अभी परिहासही था। भाग्यों से तुह्मारे मानरोग को औषधि पाई—अच्छा जोहो अब तो तुम हम पर प्रसन्न हुई न ?

विला०—भला मैं आप पर अप्रसन्न कब थी ?

(मदनिका का पुनः प्रवेश)

राजा०—अरे आओ सखी ! देखो भई तुम्हें देख कर हमें बड़ा डर लगता है।

मद०—सो क्यों महाराज ? आप क्या कहते हैं ?

राजा०—सखी तुम मदनकेतु हो। जहां तुम वायु से परिचालित हो वहां क्या रक्षा हो सकती है ? सदा काम देव को रण दुन्दुभी बजती ही रहती है, और प्रमाद प्रेम का युद्ध हुआही करता है और पंचशर के आघात से लोगों को प्राण बचाना कठिन हो जाता है।

मद०—आप को इसकी क्या चिन्ता है महाराज ? आप यदि मदन के शराघात में पड़ जांय तो उसकी उचित औषधी आपके पासही है, ऐसी औषधी के रहते आप को क्या भय है ?

राजा०—ह हा हा ! शाबाश, सखी, ठीक कहती हो।

तुमतो भई सरस्वती की पितामही हो!—जो हो हम तुमसे बड़े प्रसन्न हुये; यह लो (गले से स्वर्ण का हार उतार कर देते हैं)

मद०—(प्रणाम करके) मैं तो महाराज की क्षुद्र दासी मात्र हूं।

राजा०—बैठो (मदनिका बैठती है) देखो सखी तुम जो हमें धनदास का सब हाल कहती थीं सो क्या सत्य है?

मद०—महाराज यदि आप इस दासी के कहने पर विश्वास न करें तो हमारी सखी से पूछ लीजिये।

राजा०—धनदास जो परमधूर्त और स्वार्थपर है इसका हाल तो हम भली प्रकार पा चुके हैं; किन्तु उसका जो इतना दूर साहस हुआ सो तो भाई हमें किसी प्रकार विश्वास नहीं होता।

मद०—महाराज जब आप अपने आंखों से देख लेंगे, अपने कानों से सुन लेंगे तब तो आप को विश्वास होगा न?

राजा०—हां! तब क्यों न होगा? इससे बढ़ कर और साक्षात् प्रमाण क्या होगा?

मद०—अच्छा तो मैं अभी आती हूं।

[जाती है

विला०—महाराज! दुष्ट धनदास ही इन सब अनर्थों का मूल है।

राजा०—इसमें क्या सन्देह है ? हमें इस विवाह का क्या प्रयोजन था विशेषत: (हाथ धर के) तुम्हारे रहते प्रिये ! क्या हम कभी किसी पर प्रेम कर सक्ते हैं ?

विला०—सोई तो महाराज ! इन्हीं सब मीठी २ बातों से आप ने मेरा मन मोह लिया है (समीप खसक कर) सच तो कहिये महाराज अब भी आप के जी में इस विवाह की इच्छा है या नहीं ?

राजा०—राम ! राम ! कहो ! हम को इस विवाह की क्या आवश्यकता है ? हमारी गति तो धनदास के पेच में फँस कर सर्प छछूंदर की सी हो गई है किन्तु मानरक्षा तो अवश्य करना चाहिये । इसी लिये यह सब उद्योग है—

(मदनिका का पुन: प्रवेश)

मद०—महाराज ! अब शीघ्र ज़रा इधर पधारिये तो उत्तम हो, धनदास आता है । (विलासवती से) सखी अब महाराज को एक बार इसका प्रमाण देखा देना चाहिए (राजा से) तो महाराज आवें ।

राजा—(उठ कर) अच्छा तो चलो । तुम जहां चलने को कहा वहीं चले । ऐसे माझी के हाथ में नौका देने से डर क्या है ? (दोनों आड़ में खड़े हो जाते हैं)

विला०—(स्वगत) धनदास बड़ा धूर्तराज है, किन्तु मद-निका ने आज जो जाल फैलाया है उस से इस शृ-गाल का निकालना दुष्कर जान पड़ता है।

(धनदास का प्रवेश)

आओ आओ—धनदास आओ। कहो भई हो तो अच्छे?

धन०—अरे सखी क्या अच्छे हैं? कैसे अच्छे हों, सो कहो। जब से उदयपुर से आया हूं महाराज नें एक बार भी मुझे अपने सन्मुख नहीं बुलाया। और कितने लोगों के मुंह से जो क्या २ बातें सुनता हूं सो तुम से क्या कहूं? भला तुमने हमें नहीं बिसारा यही बड़ी बात है।

विला०—क्या भाई, आकाश चिरकाल तक मेघावृत्त रह-ता है।

धन०—नहीं सो तो नहीं रहता किन्तु भई यदि तुम ह-मारे इस मेघावृत आकाश के पूर्ण शशी हो जाओ तो क्या हमें कोई पा सकता है।

मद०—(धीरे से) महाराज, सुनते हैं न?

राजा०—(धीरे से) चुप—

धन०—(स्वगत) मदनिका ने कोई सहस्रों बार मुझ से कहा होगा कि विलासवती मनही मन मुझे प्यार करती है, और इस का रंग ढङ्ग देखने से भी यह बात

ठीक जान पड़ती है। (प्रकाश) तुम, सखी, चुप क्यों हो रही हो हम तुम्हें कितना प्यार करते हैं क्या तुम नहीं जानती हो ?

विला०—(कुछ लज्जित हो कर) सो भई हम कैसे जानेंगे ?

धन०—तो सखी तुम क्या यह भी नहीं जानती हो कि भेक सदा कमलिनी के साथही रहता है किन्तु उस सुधामय पुष्प का आनन्द तो केवल भ्रमरही जानता है। तुम क्या पदार्थ हो सो क्या राजा विचारे का काम है कि समझे ? अच्छा हा !

राजा०—(धीरे से) सुना ! दुष्ट का ढीठपन ! इच्छा होती है कि इस नराधम का सिर अभी काट फेकूं (तल्वार निकालने का उद्योग करते हैं)

मद०—यह क्या महाराज ? (हाथ धर के) यह आप क्या करते हैं ?

धन०—देखो विलासवती—

विला०—क्या कहते हो भई ?

धन०—सखी हम तो तुम्हारे दासानुदास हैं और हमने जो कुछ राज काज में संग्रह किया है वह सब तुम्हाराही है (स्वगत) इस ठगिन के पास जो बहुमूल्यरत्न महाराज ने दिये हैं उन्हें कैसे अपने हाथ करूं ? सो भी धीरे २ हो जायगा ! इसे एक बार यहां से लेजाने

मदनिका विलासवती के महल में महाराज जैपाल को आड़ में से धनदास की धूर्तता को दिखाती है॥

पाऊं तो कार्य्य सिद्ध हो जाय (प्रकाश) सखी तुम चुप क्यों हो गई ?

विला०—अब मैं क्या कहूं ?

धन०—देखो कल्ह सवेरे तो राजा सैन्य लेकर मरुदेश को आक्रमण करने की यात्रा करेंगे और शस्त्र विद्या में तो वे जैसे निपुण हैं सभी जानते हैं, रणभूमि देखतेही मुर्छा आ जाती है। हा हा हा हा हम खूब जानते हैं ऐसा कापुरुष क्या संसार में और कोई है ?

राजा—(धीरे से) दुष्ट ! क्या ऐसो बड़ी बात हमको कहता है (मारने को उद्यत होते हैं)

मद०—(रोककर धीरे से) क्या करते हैं महाराज जरा शान्त हो के सुनिये तो सही, क्या कहता है।

धन०—प्रिये ! हमारे मन में आता है कि या तो यह इस युद्ध में मारा जायगा या मुंह में कारिख लगाकर देश को लौट आवेगा।

राजा—(धीरे से) अच्छा देखें किसके मुंह में कारिख लगती है—कृतघ्न ! पामर ! नोच !

धन०—तो तुम यदि कहो तो हम सब तैयारी करें चलो कल्ह हम दोनों जने इस देश से निकल चलें, उस अधम कापुरुष की पास रहने से तुमारा क्या उपकार होगा ? बालू की नेह का कहो क्या भरोसा है ?।

राजा – (आगे बढ़कर, क्रोध से धनदास का गला दबाकर) अरे दुराचार नराधम दासी पुत्र ! क्या यही तेरी कृतघ्नता है? हम देखते हैं कि तू अपने चिरोपकारी मनुष्य के गले पर भी छूरी फेर सकता है।

धन०—(डर के स्वगत) अरे अब तो सर्वनाश हुआ ! यह तो मैं स्वप्न में भी नहीं जानता था कि ये यहां छिपे हुये हैं। अब क्या होगा? कहां जाऊँ – इस बार तो गया ! और क्या? इसी हत्यारिणी कुलटाही ने मेरी जान ली !!

राजा—बोल—बोलता क्यों नहीं? तू जैसा दुष्ट है सो हमने इतने दिनोपरान्त जाना। तुझसे जो न हो सो थोड़ा है। तो अब भगवती वसुन्धरा तुझ दुराचारी पापी का बोझ अधिक न सहेंगी (तलवार निकालते हैं)

विला०—(घबड़ाकर और राजा का हाथ थामकर) महाराज ये क्या करते हैं? क्षमा कीजिये। इस क्षुद्र प्राणी के मारने से आपकी तलवार केवल कलङ्कित मात्र होगी। सिंह क्या कभी शृङ्गाल पर आक्रमण करता है? सो महाराज मुझे इसके प्राण की भिक्षादान दें।

राजा—प्रिये ! तुम्हारी बात मैं किसी प्रकार नहीं टाल सकता—अच्छा इसे प्राणदण्ड न दूंगा किन्तु (तलवार को म्यान में रखकर) जिसमें हमको फिर इसका मुंह

महाराजजयद्रथनदासकागलादवाकरमारनेकोलियेतलवार निकालतेहैं

देखना न पड़े ऐसा दण्ड देना आवश्यक है। कोई रक्षक है?

(नेपथ्य में) महाराज?

(रक्षक का प्रवेश)

राजा—देखो इस दुराचार को इसी क्षण कोतवाल के पास ले जाओ और उससे कहो कि इसका सिर मूँड़कर, मण्ठा डालकर, मुख में कारिख लगाकर इसे देश निकाला दे और जो कुछ इसकी सम्पत्ति है सब दरिद्र ब्राह्मणों को दे दे!

रक्षक—जो आज्ञा महाराज (धनदास से) चल—

धन०—(हाथ जोड़कर और नेत्र डबडबाकर) महाराज—

राजा—चुप,, वेहया! अब हम तेरी कुछ नहीं सुना चाहते। ले जा—इसका मुख देखने से पाप होता है!

रक्षक—चल—

(धनदास को लेकर रक्षक जाता है)

मद०—(आगे वढ़कर) आहा! प्राण वच गया यही वड़ी रक्षा हुई! इसी क्षण दुष्ट की प्राणलीला समाप्त हो चुकी थीं हा! हा! मूसाराम सारी रात चोरी कर करके खाते रहे सवेरा होते विचारे मूसदान में फँस गये। हा! हा! हा!

विला०—यह सब भाई तेरोही कुशलता से हुआ। जो हो महाराज ने जो उसे प्राणदान दिया यही बड़ा लाभ हुआ। महाराज को इसका हाल इतने दिनोपरान्त मालूम पड़ा यही बड़े आनन्द का विषय है।

राजा—इस दुराचारी ने हमें जो अनेक कुमार्गों में चलाया है उसे स्मरण करके मन में बड़ी लज्जा होती है। किन्तु क्या करें केवल तुम्हारे अनुरोध से उसे इतना थोड़ा दण्ड देकर छोड़ दिया।

(नेपथ्य में रणवाद्य)

(महाराज की जय हो। राजकुमार की जय हो।)

राजा—(चकित होकर) जान पड़ता है कि कुमार धनकुल सिंह पहुंच गये, प्रिये! अब हमे विदा करो हमे जाना पड़ा।

विला०—क्यों महाराज इतनी जल्दी, तो फिर महाराज के दर्शन कब होंगे?

राजा—प्रिये! सो कैसे कह सकें? हम कल्ह प्रातःकालही युद्ध के लिये प्रस्थान करेंगे यदि बच जायंगे तो तुमसे पुनः भेंट होगी नहीं तो इस जन्म में तो यह अन्तिम भेंट समझना (हाथ धर के) देखो प्रिये! यदि हम मर भी जांय तो हमें एकदम भूल मत जाना कभी २ स्मरण करना—और क्या कहें!

धनदास कहता राज जैपूरके अः झाडु साथ निकाल रहा है

विला०—(निरुत्तर होकर रोती है)
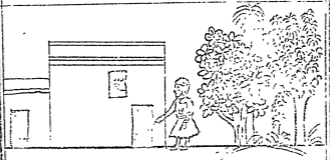
मद०—(नेत्र डबडबाकर) बलिहारी—महाराज भला ऐसी बात क्या चाहते हैं।

राजा—सखी यह कुछ साधारण बात तो नहीं है—पृथ्वी भर के क्षत्रियकुल इस रणक्षेत्र में एकत्र होंगे। अच्छा जो हो अब आओ प्रिये हमें प्रसन्न होकर विदा करो।

मद०—आओ सखी महाराज के सङ्ग द्वार पर चलें अब रोने से क्या होगा! भई अब परमेश्वर से यही प्रार्थना करो कि महाराज जिसमें प्रसन्नतापूर्वक अपने राज्य को लौट आवें।

(सब जाते हैं)

तृतीय गर्भाङ्क।

(स्थान जयपुर—नगर प्रान्त की राजमार्ग के सन्मुख देवालय की झंझरी में से विलासवती और मदनिका झाँकती हैं)

मद०—कहो सखी! अब चलो न। घर चलकर स्नान इत्यादि करें दोपहर का समय तो हो चुका—विशेषतः देवदर्शन के बहाने से यहां आई थी अब यहां अधिक ठहरने से लोग क्या कहेंगे?

(नेपथ्य में रण के बाजे बजते हैं)

विला०—लो सुनो ! जान पड़ता है महाराज लौटे आते हैं।

मद०—तुमारी तो यह इच्छाही है। भली प्रकार देखो तो कौन आता है ?

विला०- सखि, मैं तो आँसुओं के मारे अन्धी हो रही हूं यह कौन है? मुझे तो कोई भी दिखाई नहीं पड़ता।

मद०—सखी ! रोने से अब क्या होगा ? यह देखो मन्त्री महाशय आते हैं।

(नीचे मन्त्री का प्रवेश)

मन्त्री—हा ! विधाता के लेख को कौन खण्डन कर सक्ता है ? हाय ! एक तुच्छ अग्निकण इतना घोर दावानल होकर जल उठा ! हाय ! इसे कितने सुन्दर तरु और कितने पशु पक्षी के घोंसले भस्म हो जायँगे कौन गिन सक्ता है। (दीर्घनिश्वास लेकर) अब आक्षेप करना वृथा है ! जब जलस्रोत पर्वत से निकल चुका तो उस की गति कौन रोक सक्ता है ? (नेपथ्य की ओर देख कर) यह कौन? अर्जुनसिंह ! तुमारी सेना अभी यहीं पड़ी है ?

(नेपथ्य में)—जी मैं चला—

मन्त्री—क्या सर्वनाश है, तुम्हें कुछ भी डर नहीं है ? यह

क्या है? ये सब आँटे की गाड़ियां अभी तक यहीं पड़ी हैं?

(नेपथ्य में से) महाशय! बैल नहीं मिलते।

मन्त्री—(कान देकर) ऐं—क्या कहा? बैल नहीं मिलते? क्या आपत्ति है। तुमलोग तब क्या कर रहे हो?

(नेपथ्य में) उठो रे उठो जल्दी गाड़ी जोतो।

पहिला—जो आज्ञा—यह लीजिये।

दूसरा—अरे बाजेवालो।

पहिला—महाशय! आशीर्वाद दीजिये—हमलोग चलें, बजाओ रे बजाओ!

(नेपथ्य में रणवाद्य—महाराज की जय हो)

मन्त्री—(स्वगत) चलो देखें और कौन दलवाले कहां क्या कर रहे हैं? आहा! यह सब क्या एक मनुष्य का काम है? इसमें तो भगवान सहस्रलोचन भी कृतार्थ होंगे या नहीं सन्देह है और हमारे तो केवल दोही नेत्र हैं।

[जाता है।

विला०—मदनिके! चल भई हम उस आँटे की गाड़ी के पीछे २ महाराज के पास चलें।

मद०—सखी तू पागल हुई है क्या? उत्तम है कि हमलोग

घर चलें देखो दोपहर ढल गई, राजहंसी भी सरोवर में अपना शरीर शीतल कर रही है तो हमलोगों का अब यहां ठहरना उचित नहीं।

विला०—सखि तुम्हारा क्या घर जाने का मन करता है?

मद०—अहा हा! तूने सखी कृष्णयात्रा आरम्भ की है क्या? अहा हा! सखी कृष्ण विना यह प्राण नहीं वचेंगे अहा हा। अरी राधे! इस यमुना कूल पर बैठकर रोने से क्या होगा? तुम्हारे वंसीधर तो इस समय मधुपुर में कुब्जा सुन्दरी के साथ केलि कर रहे हैं। अहाहा!

विला०—छिः! जा भई यह सब तमाशा इस समय नहीं अच्छा लगता।

मद०—यह कौन है? धनदास है क्या?

(नीचे दरिद्र वेष में धनदास का प्रवेश)

धन०—(चारोंओर देखकर स्वगत) हे विधाता! क्या तेरे मन में यही था? मैंने इतने दिन तक राज संसार में रहकर नाना भांति के सुखभोग किये अन्त में अन्नाभाव से भूखे कुत्ते को नाईं क्या मुझे द्वार २ फिरना पड़ा? इसमें तेरा क्या दोष है!! हमारेही कर्मों का दोष है। पाप कर्म का फल तो ऐसाही है। हा! हा! लोभमद में मत्त होने से मनुष्य को क्या कुछ ज्ञान रहता है? यदि ऐसा न होता तो भगवान रामचन्द्र

सीता को छोड़कर क्यों सुवर्ण मृग के पीछे जाते। इसी लोभमद में मत्त होकर मैंने कितने कुकर्म किये क्या कुछ गिनती है ? (रोता है) हे प्रभो मेरे इस पश्चात्तापानल से तू इस मेरे पापपङ्कमलिन आत्मा को धो डाल (फिर रोता है) हाय ! हाय ! मुझे यदि यह ज्ञान पहिले होता तो क्यों मेरी ऐसी दुर्दशा होती ?

मद०—अहा सखी सुना ! देखो सखी धनदास की दशा देखकर मुझे कितना दुख होता है कि क्या कहूं ? तुम यहीं ठहरी रहो मैं जाकर उससे दो एक बात कर आऊँ।

[जाती है।

धन०—(स्वगत) धन एकत्र करने के लिये मनुष्य क्या नहीं करता है ? किन्तु वह धन किसी के साथ नहीं जाता हा ! इस बात को लोग नहीं समझते यह कैसा आश्चर्य है ! मैंने जो इतने परिश्रम से यह रत्नमाला बनाई सो कहां गई ? उसे कौन भोग करेगा ? हा !

(मदनिका का प्रवेश)

मद०—क्या धनदास हैं ?

धन०—ऐं—कौन है ? मदनिका है ? (स्वगत) क्या अभी कुछ और कष्ट पाना बाकी है ? (प्रकाश) देखो भई

मदनिके ! जितना दण्ड पाना उचित है मैं पा चुका चुका अब तुम—

मद०—नहीं नहीं । तुम मत डरो । मैं तुम्हारी कुछ बुराई नहीं करूंगी । तुम्हारे दुःख से मैं कितनी दुखी हूं सो तुम से क्या कहूं । धनदास ! यद्यपि भई हम सती स्त्री नहीं हैं सच है किन्तु तौभी हमारा स्त्री का जामा है हजार होय पराये का दुःख देखकर मेरे मन में खेद होताही है । सो भई जो हुआ सो हुआ, अब यह लो हम तुम्हें यह अँगूठी देते हैं ।

धन०—(कुछ चकित होकर) ऐं—यह अँगूठी भई तुमने कहां पाया ?

मद०—क्यों तुमही ने तो हमको दिया था । भूल गये क्या ? उदयपुर का मदनमोहन याद है कि नहीं ? (मन्दहास्य करती है)

धन०—ऐं ?--किस्का नाम कहा, किस्का ?

मद०—मदनमोहन, जिसने तुम्हें कहा था कि मैं मदनिका को दिखलाऊँगा । आज सो वात सच हुई न ? यह देखो—मैंही वह मदनिका हूं ।

धन०—तो क्या तुम उदयपुर गई थीं ?

मद०—अब और कैसे कहूं ? मैं न होती तो ये सब बातें कैसे होतीं ? तुम समझते थे कि तुमसे बढ़कर कोई

धूर्त नहीं है, किन्तु अब देखा न? कि सिर के ऊपर सिर है! भला तुमही विचारकर देखो तो कि तुम कैसे दुष्ट हो। अच्छा जो हुआ सो हुआ अब यदि तुम्हारी वह दुष्ट बुद्धि चली गई हो तो हमारे सङ्ग आओ देखो मैंने जो तुमें तोड़ा है तो फिर बना सकती हूं कि नहीं!

धन०—सखी तुम्हारी बात सुनकर तो मेरे मुंह से बात नहीं निकलती तो क्या तुम्हीं मदनमोहन थीं? क्या आश्चर्य है—मैं क्या कुछ भी पहिचान न सका?

मद०—आओ, तुम हमारे सङ्ग आओ। यह देखो विलासवती ऊपर खड़ी है। उससे अब प्रीति का नाम मात्र भी न लेना। और देखो इस जन्म में किसी की भी स्त्री काहकी उपेक्षा न करना। इसका फल तो देखाही? क्यों? अहा हा! (विलासवती से) आओ सखी नीचे उतर आओ मैं बहुत थक गई हूं चलो धनदास, चलो।

[सब जाते हैं।

पञ्चम अङ्क ।

प्रथम गर्भाङ्क ।

स्थान उदयपुर—राजगृह ।

(राजा भीमसिंह और मन्त्री का प्रवेश)

राजा—क्या आपत्ति है। हां, इसके आगे ?

मन्त्री—महाराज ! राजा मानसिंह ने तलवार छूकर यह प्रतिज्ञा की है कि चाहे जो हो हम सुकुमारी राजकुमारी कृष्णा को अवश्य बरेंगे। नहीं तो उदयपुर को भस्मकर महाराज के राज को छार खार कर डालेंगे। राजा जगतसिंह का भी ऐसाही प्रण है।

राजा—(क्षोभ और विरक्ति के सहित) हां ! कलिकाल में क्या वीरता इसी का नाम है ? (सिर पर हाथ मार कर) हाय ! हाय ! मृतक शरीर पर कौन खड्ग प्रहार नहीं कर सक्ता। यदि हमारी ऐसी दशा न होती तो क्या ये लोग इतना अहङ्कार कर सकते ? देखो हमारा कोष धन शून्य हो रहा है, सैन्य वीर शून्य है अतएव हम अभिमन्यु की नांई इन सात रथियों में निरस्त हो रहे हैं सो हमारा सर्वनाश कुछ कठिन नहीं है—हे विधातः यह अपमान और कितने दिन सहना होगा, यमराज क्या हमें भूल गये हैं ?

मंत्री—महाराज, आप के इतने चंचल होने से—

राजा—(कुछ क्रोध से) क्या कहते हो सत्यदास! क्या यह सब हाल सुनकर स्थिर रहा जाता है? मरुदेश का राजा कौन है जो हमें धमकाता है? और राजा जगतसिंह भी जो अपने को इस समय भूल गये हैं यह बड़ा आश्चर्य है (घूम कर देखते हैं)

मंत्री—(स्वगत) हा! हा! यह क्या रोष का समय है? हमारी जो इस समय ऐसी अवस्था है उससे क्या यह प्रबल बैरीदल को कटूक्ति से शान्त करना उचित है (दीर्घ निश्वास लेकर) हे बिधातः कुमारी कृष्णा के लिये इतनी आपत्ति उठेगी यह तो हम लोग स्वप्न में भी नहीं जानते थे॥

राजा -(बैठ कर) बैठो सत्यदास बैठो।

मंत्री—जो आज्ञा महाराज (बैठ जाता है)

राजा – कहो तो अब क्या कर्तव्य है? हमें तो किसी ओर भी इस विपत्सागर के मारे दिखाई नहीं पड़ता (दीर्घनिश्वास लेकर) जब से हम इस राजसिंहासन पर बैठे हैं तब से जो कुछ सुख भोग हमने किया है सो तो तुम भली प्रकार जानतेही हो तो बताओ विधाता ने हमारा क्या अपराध देखकर हमें इतना कष्ट दिया है जो ऐसा मणिमय राजमुकुट भी हमारे सिर

पर अग्निमय हो रहा है ! हाय यह कृष्णा हमारे घर क्यों जन्मी थी ? हाय !

मन्त्री-- महाराज सूर्य्यवंसी राजा लोग पूर्वकाल में अपने कुल और मानरक्षा के लिये जो २ कीर्त्ति कर गये हैं क्या वह आपको कुछ भी स्मरण नहीं है ?

राजा - सत्यदास, तुमने यह सब बातें इस समय हमें क्यों स्मरण करा दिया ! प्रकाश से अन्धकार में आने से वह अन्धकार द्विगुणित जान पड़ता है, यह सब प्राचीन बातें स्मरण करके क्या एकक्षण भी जीने की इच्छा होती है ?

मन्त्री—महाराज—

राजा -- हा! इस शैलराज के वंश में हमारे सरीखा कापुरुष क्या कभी कोई जन्मा था ! व्याघ्र के भय से शृगाल कन्दरे में छिप जाता है किन्तु सिंह की भी क्या ऐसी रीति है ?

(बलेन्द्रसिंह का प्रवेश)

आओ भाई बैठो तुमने यह सब हाल सुना है न ?

बलें०—(बैठकर) जी हां । मन्त्री महाशय से सब हाल पाया है। और हमने भी जो कईएक दूत भेजे थे उन में से तीन मनुष्य लौट कर आये हैं । उनसे मालूम हुआ कि यवनपति अमीर और महाराष्ट्रपति माधवजी दोनों राजा मानसिंह के पक्ष पर हैं ।

राजा—यह क्या? अमीर तो धनकुलसिंह के दल में था न?

वले०—जी हां था तो सही। किन्तु वह छल से धनकुलसिंह का प्राण नाश कर अब राजा मानसिंह के सहाय पर हुआ है।

राजा—ऐं—क्या कहा? हा! हम देखते हैं कि विश्वास-घातकता तो इस यवनकुल का कुलव्रत है!

मन्त्री—जी इसमें क्या सन्देह है? भारतवर्ष में इसके बड़े २ प्रमाण पाये जाते हैं।

राजा—तो भई जयपुर से क्या सम्वाद आया है? सुनें तो सही।

वले० - जी, राजा जगतसिंह भी जी जान से युद्ध का सामान कर रहे हैं और अनेक राज वीर भी उनकी सहायता में हैं।

मन्त्री—हाय! हाय! इस समय की बात सुनकर कितने ओर से कितने लोग गरज उठेंगे इसकी कुछ गिनती नहीं है। आंधी आने पर सागर में तरङ्ग उठतीही है।

राजा हां सो तो उठतीही है। तो अब इसमें क्या कर्तव्य है? तुम क्या कहते हो वलेन्द्र?

वले०—जी मैं क्या कहूं? महाराज के हितसाधन किंवा देश की भलाई में हमारा प्राण पर्य्यन्त भी जाय तो उसमें भी हम प्रस्तुत हैं किन्तु इस विपत्ति से निष्कृति

पाना मनुष्य का असाध्य काम है। जो हो जब तक हमारे शरीर में प्राण हैं तब तक यत्न करने में हम किसी प्रकार पीछे न हटेंगे, इस समय देवता भी—

राजा—भाई! अब क्या वह समय है कि देवता लोग मनुष्य जाति के दुख से दुखी हों? दुरन्त कलिकाल के प्रताप से देवता लोग भी अन्तर्ध्यान हो गये। किन्तु अब भी जो चन्द्र सूर्य्य का उदय होता है सो केवल विधाता के अलङ्घनीय विधि का कारण है।

बले०—यदि आप आज्ञा दें तो न हो एकवार देखें कि विधाता ने हमारे अदृष्ट में क्या लिखा है?

राजा—(दीर्घनिश्वास लेकर) भैया इसके देखने की क्या आवश्यकता है? कैसे देखोगे? बिचारही के न देख लो? यदि कोई मनुष्य यह कहके कि विधाता ने हमारे भाग में क्या लिखा है ऊँचे पर्वत से कूद पड़े अथवा जलती हुई अग्नि में प्रवेश करे, तो जो कुछ विधाता ने उसके भाग्य में लिखा है वह उसी क्षण आपही प्रगट हो जायगा।

बले०-जी हां यह ठीक है, किन्तु -

मन्त्री -(बलेन्द्रसिंह से) आप ज़रा इस पत्र को पढ़कर देखिये तो (पत्र देता है)

राजा - यह कैसा पत्र है, मन्त्री?

मन्त्री—महाराज यह पत्र मैंने गत रात्रि को पाया परन्तु किसने कहां से लिखा है और इसे कौन दे गया है इसका पता मुझे कुछ नहीं लगता।

वले॰—हा! हा! राम! राम! राम!—ऐसी बात क्या कोई मुंह से कहता है!!!

राजा—क्यों भाई! कहो तो क्या बात है?

वले॰—जी, मैं ऐसी बात मुंह से नहीं कह सकता, आप चाहें पढ़ देखें। मेरी सामर्थ्य नहीं है जो मैं ऐसी बात आपसे कह सकूं। (राजा को पत्र देते हैं)

मन्त्री—बात तो निस्सन्देह बड़ी भयङ्कर है किन्तु—

वले॰—राम! राम! ऐसी बात से क्या प्रयोजन! राम! राम! यह क्या बात है! छिः! छिः! छिः!

मन्त्री—(धीरे से) तो कहना—यह—कि यदि इससे उत्तम कोई दूसरा उपाय हो तो आप सोचकर कहें।

वले॰—मैं इसे भली प्रकार विचार चुका—यह क्या मनुष्य का कर्म्म है?

मन्त्री—जी, कुल और मान की रक्षा करना मनुष्य जाति का प्रधान कर्म्म है, विशेषतः क्षत्रियकुल की जो रीति है सो तो आप भली प्रकार जानते हैं।

राजा—(कुछ काल तक निस्तब्ध रहकर और दीर्घनिश्वास लेकर) मन्त्री—

मन्त्री—महाराज!

राजा—यह पत्र तुम्हें किसने लिखा है?

मन्त्री—महाराज, यह मैं नहीं जानता।

राजा—देखो मन्त्री, यह वैद्य अत्यन्त कटु औषधि लिखता है किन्तु हम देखते हैं तो रोगनिवारण में यह अत्यन्त सुनिपुण है (दीर्घनिश्वास लेते हैं और चुपचाप खड़े रहते हैं)

मन्त्री—जी हां—और ज्ञान पड़ता है कि इस रोग की औषधि इसके अतिरिक्त दूसरी नहीं है।

राजा· भाई बलेन्द्र—

बले०—जी, क्या आज्ञा है—

राजा—भई क्या होगा?

बले०—जी यह पत्र मुझे दीजिये, इसे मैं फाड़कर फेंक दूं, यह किसी शत्रु का लेख है, इसमें कोई सन्देह नहीं, क्या आपत्ति है!

राजा—तुम क्या कहते हो, सत्यदास?

मन्त्री—महाराज, विपद् काल में लोक की रक्षा के लिये अपना वक्षःस्थल भी काटकर देवपूजा में रक्तदान देना होता है।

राजा—सो तो ठीक है सत्यदास! किन्तु वक्षःस्थल विदीर्ण करके रक्तप्रदान करना और इस काम में बड़ा अन्तर है।

मन्त्री—जी हां सो ठीक है, उस यातना से यह कष्ट कहीं अधिक है किन्तु विचार के देखिये कि इस समय सर्व नाश होना सम्भव है, तो सर्वनाश की अपेक्षा—

राजा—सत्यदास ! इस बात को स्मरण करनेही से शरीर के रोंगटें खड़े हो जाते हैं और चारोंओर अन्धकार जान पड़ता है। हा ! हे परमेश्वर ! क्या होगा ? न, न, न,—क्या ऐसा भी कोई करता है—

मन्त्री—महाराज ! विचार के देखिये, कि कई सौ राज-सतियों ने इस वंश को मानरक्षा के लिये अग्निकुण्ड में प्रवेश करके देहत्याग किया, विशेषत: जो नरपति होते हैं वे मानों प्रजागण के पिता तुल्य होते हैं तो एक व्यक्ति के पुत्री के लिये क्या सहस्र लोगों के धन और प्राण का नष्ट करना उचित है ?

राजा—हां, सो ठीक है—किन्तु यह विचार के भी क्या मैं ऐसे अद्भुत निठुर कार्य्य में सम्मत हो सकता हूं। और राजमहिषी सुनेंगी तो क्या कहेंगी ? हम पुरुष हैं, सब कुछ सह सकते हैं; किन्तु—

मन्त्री—महाराज ! उन्हें इसका पताही कहां से लगेगा ?

राजा—सत्यदास ! भला यह बात भी क्या छिपी रहेगी ?

मन्त्री—जी, सो तो ठीक है, किन्तु एकबार चूक जाने से फिर यह बात न होगी। कारण यह है कि जिस

विधाता ने इस शोक को रचा है, वही इसे घटावेगा भी। अतएव शोक कुछ चिरस्थायी नहीं है।

राजा—(सोचकर) हमारा मरनाही ठीक है—न, न, इससे क्या होगा ? केवल आत्महत्या का पाप सिर उठाना है, विशेषतः अपने राज्य और परिवार समूह की विपद् जान कर मरना भी तो कापुरुषता है। न, न—कृष्णा के रहते यह विवाद मिटे ऐसा तो कोई उपायही नहीं जान पड़ता। और जो यह विवाद न मिटा तौभी सर्वनाश है। हा ! न, न—(कुछ उठकर) तो क्या मैं ऐसे काम में सम्मत हो सक्ता हूं ? सत्यदास! ऐसा कर्म्म तो चाण्डाल भी न कर सकेगा, और फिर चाण्डाल भी तो मनुष्य है ऐसे कर्म से तो पशु पत्ती भी विमुख होजाते हैं। देखो जो पशु पत्ती मांसाहारी हैं वे भी अपने बच्चों को अपने प्राण से भी अधिक पालते हैं।

मन्त्री—महाराज, यह तर्क वितर्क करने का विषय नहीं है। (वलेन्द्रसिंह से) आप क्या कहते हैं वीरवर ?

वले०—मैं अब इसमें और क्या कहूं ?

राजा—भाई वलेन्द्र !—हम क्या इच्छापूर्वक अपनी पुत्री कृष्णा के प्राणनाश में सम्मत हो सकते हैं ? जिसने यह पत्र लिखा है, जान पड़ता है कि वह अपत्यस्नेह

किसका नाम है जानता भी नहीं। भाई इस बात को विचार कर मन कैसा हो उठता है, क्या कहें—ओह। (वक्षःस्थल पर हाथ रखकर) हे विधाता तूने क्या हमारे अदृष्ट में यही लिखा था। ऐसी सरला बाला। हमारी प्राणप्रतिमा निरापराधही—हा। पुत्री कृष्णा—हा! (मूर्छित होकर गिरते हैं)

मन्त्री—हा। हा। यह क्या?

वहेन्द्र०—हा। यह क्या?—क्या होगा? अरे कोई है।

(सेवक का प्रवेश)

सेवक—हा! यह क्या।—महाराज।—यह क्या?

मन्त्री—वीरवर! हम देखते हैं कि इस समय बड़ी कठिनता उपस्थित है। तो आइये हमलोग महाराज को यहां से ले चलें। रामप्रसाद। तू शीघ्र राजवैद्य को बुला तो ला—

सेवक—जो आज्ञा— (जाता है)

मन्त्री—आप महाराज को धरिये—

[राजा को लेकर दोनों जाते हैं]

द्वितीय गर्भाङ्क ।

स्थान उदयपुर—भगवान एकलिङ्ग के मन्दिर के सन्मुख।

(सेवक का प्रवेश)

सेवक—(स्वगत) आह ! कैसा अन्धकार है ! आकाश में एक भी तारा दिखाई नहीं पड़ता । (चारोंओर देख कर) कैसा भयानक स्थान है ! यहां कितने भूत कितने प्रेत और कितने पिशाच रहते हैं कौन कह सक्ता है । महाराज ऐसे समय इस देवालय में क्यों आये कुछ समझ नहीं पड़ता । (चकित होकर) अरे बाप ! यह क्या है ? यह घुघ्घू है ! मेरा तो प्राणही एकवार उड़ गया ! सुनते हैं कि भूत घुघ्घू ही का रूप धर लेता है; सो ठीक होगा । यह मधुर स्वर भूतों को छोड़ और किसे अच्छा लगेगा । दूर ! दूर ! (घूमकर) क्या आश्चर्य है ! आज कई दिन हुये महाराज अत्यन्त चञ्चल हो गये हैं । खाना, पीना, निद्रा, राजकाज, सभी परित्याग कर दिया है और सदा उनके मुख से यही सुन पड़ता है 'हे विधाता हमारे भाग्य में क्या यही था !' हा ! पुण्य क्षणे ! जो तेरा रक्षक उसी को क्या ग्रहदोष से तेरा भक्षक होना पड़ा । (नेपथ्य में पैर की खटखटाहट सुन चकित होकर) अरे ! अब

क्या? यह ताड़ वृक्ष की नांई लम्बा! अरे बाप! यह क्या? नन्दी है कि भृङ्गी! कि वीरभद्र? वीरभद्रही होगा! नहीं तो इतना लम्बा और कौन होगा? अरे बाप! यह तो इधरही चला आता है (रक्षक का प्रवेश) कौन है? रघुवरसिंह! अरे अब तो प्राण बचा। हम तो भाई तुम्हें वीरभद्र समझकर भागने लगे थे। पर तुम भी तो वीरभद्रही हो।—

रक्षक—चुप, चुप! इतना चिल्लाकर मत बोल—

सेवक—क्यों! क्यों! क्या है?

रक्षक—जान पड़ता है, महाराज बड़े सङ्कट में हैं, बचते हैं कि नहीं यही सन्देह है।

सेवक—क्या कहा रघुवरसिंह?

रक्षक—महाराज बैठे २ मूर्छित हो जाते हैं। शम्भुदास और उनके प्रधान २ शिष्य लोग अनेक औषधि यत्न देते हैं किन्तु किसी से भी कुछ लाभ नहीं होता। अहा! महाराज का दुख देखकर हृदय फटा जाता है और राजकुमार बलेन्द्रसिंह भी अत्यन्त दुखित हैं। देखो भई, बड़े घर के भाई भाई में हमने तो ऐसा प्रेम कहीं नहीं देखा। दोनों जने मानो एक प्राण हो रहे हैं।

सेवक—इसमें क्या सन्देह है?

रक्षक—तुम तो भाई सदाही महाराज के पास रहते हो तो महाराज के ऐसा होने का कारण क्या कुछ जानते हो ?

सेवक—क्यों नहीं ? तुम भी तो भाई राजकुमार के पास रहते हो । तो क्या तुम कुछ नहीं जानते ?

रक्षक—कौन जाने भाई, कुछ समझ नहीं आता। परन्तु कुछ अनुमान होता है कि राजकुमारी लक्षणा का विवाह विषयही इस विपद् का मूल कारण है; कई दिन से सेनानी महाशय और मन्त्री महाशय दोनों के मुख से उसी का नाम सुनते हैं।

सेवक—हम भी भाई महाराज के मुख से ऐसाही सुनते हैं!

(बलेन्द्रसिंह का प्रवेश)

बलेन्द्र०—(स्वगत) क्या सर्वनाशही होगा । यह क्या हमारा कर्म्म है। हाथी सुकुमार कुसुम को निस्सन्देह दलन कर डालता है, किन्तु अन्त को वह पशुही है न ! रूप, लावण्य, गुण इत्यादि के बारे में वह अन्धा होता है; किन्तु मनुष्य क्या कभी पशु का काम कर सक्ता है ! न, न, यह मेरा कर्म्म नहीं है। अब हमारा यहां से चला जानाही उचित है। (प्रकाश) रघुवरसिंह!

रक्षक—क्या आज्ञा है महाराज ?—

बलेन्द्र०—देखो सहीस से कहो शीघ्र हमारा घोड़ा ले आवे—

स्वाम—जो आज्ञा। (सेवक से) भई बड़ा अन्धकार छा रहा है आओ हम दोनों सने चलें।

सेवक—अच्छा चलो। [दोनों जाते हैं।

(मन्त्री का प्रवेश)

मन्त्री –(हाथ धर कर) राजकुमार, शान्त होओ, शान्त होओ ! और मैं क्या कहूं ! यदि आप ऐसे विरक्त होंगे तो सर्वनाश हो जायगा। आइये आपको महाराज पुनः बुलाते हैं।

यशो० –(हाथ छुड़ाकर) क्या कहते हो, मन्त्री ? क्या मैं चाण्डाल हूं ! या पाखण्डी हूं ? कि हमारा यह कर्म है ? इस कलङ्कसागर में महाराज मुझसे क्यों गोता लगवाया चाहते हैं ? ऐं ? हम क्या कहके अपने मन को प्रबोध करेंगे, कहो तो ! छाग हमें प्राण के समान प्रिय है ! मैं कैसे निरापराध उसका प्राणनाश करूँ ? मनुष्य सांसारिक सुख के लिये लोक परलोक दोनों नाश करता है यह कहके कि परलोक में न जाने क्या होगा; किन्तु तुम्हीं कहो कि पाप कर्म का फल क्या इसी लोक में नहीं भोगना पड़ता ? देखो मन्त्री. तुम ऐसे घृणास्पद कर्म करने के लिये फिर हमसे अनुरोध मत करना।

मन्त्री—(हाथ धर के) राजकुमार, आप घर तो चलिये, यह स्थान ऐसी बातों के योग्य नहीं है।

[दोनों जाते हैं।

(चार सन्यासियों का प्रवेश)

सब० – बम् बम् भोलानाथ। (सब बैठते हैं और शिवस्तुति पाठ करते हैं) बम् महादेव !

प्रथम—गोसांईजी। आप जो कहते थे कि आज की रात्रि महाराज पर कोई विपत्ति आवेगी, इसका क्या कारण है ? और आपने यह कैसे जाना ?

दूसरा—पुत्र। तुम हमारे शिष्य हो अतएव तुमसे कोई बात छिपाना हमें उचित नहीं है आज सन्ध्या को ध्यान में देखा कि जैसे देव देव महादेव के नेत्रों से जलधारा चली जाती है ! कुछ कालानन्तर राजभवन की ओर दृष्टि करने से जान पड़ा कि मानों उस स्थान से एक रुधिर की नदी बह रही है। तदुपरान्त आकाश की ओर जो देखा तो क्या जान पड़ा कि मानों किसी प्रचण्ड अग्नि में लक्ष्मी देवी जल रही हैं और सब देवतागण हाहाकार कर रहे हैं ! इसके उपरान्तही यह घोर अंधकार और मेघगर्जन आरम्भ हुआ है। यही सब कुलक्षण हैं ! अतएव कोई न कोई भारी विपत्ति आवेगी इसमें सन्देह नहीं—

चारसन्यासियोंकीआपसमेंबातों
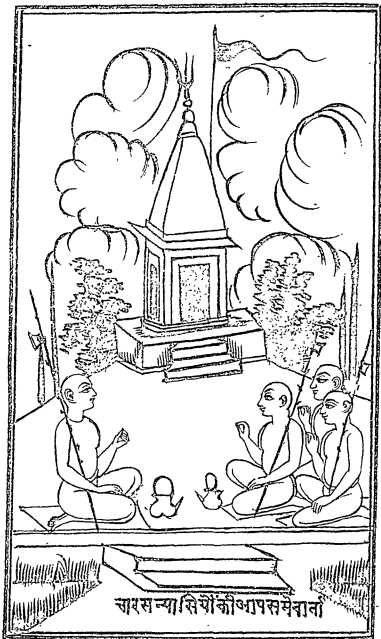
प्रथम—तो आप ने महाराज से यह बात क्यों न कही ?

दूसरा - पुत्र, विधाता ने जो लिखा है वह अवश्यही होगा, अतएव महाराज को इस विषय का सन्देश देना उन्हें अधिक उद्विग्न करना है, और उपकार कुछ नहीं है।

तीसरा—कहां तो यह युद्ध उपस्थित है और कहां अब और क्या आपत्ति आया चाहती है ?

दूसरा—सो केवल भगवान एकलिङ्ग ही जानते हैं मनुष्य की क्या सामर्थ्य है। हमें अनुमान होता है कि जिस के लिये यह युद्ध उपस्थित है उसी पर कहीं कोई अनिष्ट न आवे! जो हो! जाने दो। चलो हम लोग यहां से चलें! जैसा आकाश मेघाच्छन्न हुआ है उस से जान पड़ता है कि अब शीघ्र ही घनघोर वृष्टि हुआ चाहती है।

सब०—बम् केदार! हर हर हर। बम्! बम्!! बम्!!!

[सब जाते हैं।]

(वलिन्द्रसिंह और मन्त्री का पुनः प्रवेश)

मन्त्री—राजकुमार! पिता की आज्ञा पालन हेतु श्रीरामचन्द्र महाराज ने राजभोग परित्याग कर वनवास स्वीकार किया। ज्येष्ठ भ्राता पितृतुल्य हैं तो महाराज की आज्ञा की अवहेला करना आप को किसी प्रकार उचित नहीं है। . . .

बले०—इन सब बातों की क्या आवश्यकता है ? हमने जब महाराज के चरण छू कर प्रतिज्ञा की थी तो क्या अब तुम्हारे मन में कुछ सन्देह है ?

मन्त्री—जी, नहीं सो भला कैसे हो सकता है ?

बले०—देखो मन्त्री तुम महाराज को सावधानी से राजगृह में लाओ हाय ! हाय ! हमारे अदृष्ट में ऐसा क्यों हुआ ? अवश्य हमारे पूर्व जन्म में कोई पाप थे नहीं तो—(नेपथ्य में) महाराज आप का घोड़ा प्रस्तुत है।

बले०—अच्छा, मन्त्री तो अब हम विदा होते हैं।

(जाते हैं)

मन्त्री—(स्वगत) यह तो सम्भावना ही न थी कि राजकुमार कभी ऐसे दुरूह कार्य्य में सम्मत होंगे। जो हो बड़े २ कष्टों से अब किसी २ प्रकार सम्मत हुये हैं। हा ! राजकुमारी कृष्णाके मृत्युके अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं है। हाय ! हाय ! हे विधाता यह क्या तेरी साधारण विडम्बना है ?

(राजा का प्रवेश)

राजा—सत्यदास ! क्या भाई बलेन्द्र चले गये ? हा ! हे विधाता ! हमारे अदृष्ट में क्या तूने यही लिखा था ? हा ! पुत्रि ! अब हम क्या तेरा वह चन्द्रमुख न देखेंगे ? हा ! हा ! छि ! हम कैसे नराधम हैं—

मन्त्री—महाराज, अब राजगृह को चलिये।

राजा—मलदास, हम अब उस श्मशान में कैसे प्रवेश करेंगे ?

मन्त्री -धर्म्मावतार -

राजा—मन्त्री, तुम हमें अब धर्म्मावतार क्यों कहतेहो. हम तो चाण्डाल से भी अधम हैं। हम साक्षात् कलिकाल के अवतार हैं।

मन्त्री—महाराज, यह सब उसी विधाता की इच्छा है।

(वृष्टि होती है और मेघ गर्जता है)

राजा—(आकाश की ओर देख कर) जान पड़ता है कि रजनी देवी ने इस पामर का नीच कर्म देख कर यह प्रचण्ड कोप धारण किया है और चन्द्र तथा नक्षत्र रूपी मणिमय आभरणों को परित्याग कर चामुण्डा रूप से गर्ज रही हैं, ओह ! कैसी भयानक रात्रि है। कैसा कालस्वरूप अंधकार है ! हे तम ! क्या तुम हमें निगल जाने को उद्यत हुये हो ? इन्द्र भगवान भी इस अन्धकार को पुनः पुनः इस दीप्तमान तड़ित से आघात करके मानो उसे द्विगुणित क्रोधान्वित करते हैं ! वज्र का कैसा भयानक शब्द है ! क्या प्रलयकाल आगया ? तो फिर हमारे मस्तक पर वज्राघात क्यों नहीं होता ! (ऊपर देख कर) हे कालदेव ! मुझे खा

जाओ ! वज्र ! इस पापात्मा को विनष्ट कर ! हे नि-शादेवि ! इस नराधम को क्यों नाहक पृथ्वी का बोझ बना रक्खा है ! इसे नष्ट क्यों नहीं करतीं ? क्या अब लौं वज्राघात नहीं हुआ ? यह इतना विलम्ब क्यों ? (हतज्ञान हो अपना सिर पीटते हैं) यह लो ! यह लो ! (कुछ चुप होकर) क्या !—वज्रभय से मैं भागा हूं क्या ! (विकट हास्य करते हैं).

मन्त्री०—(स्वगत) हे भगवन् ! यह क्या विपत्ति आई है; महाराज, तो कुछ विक्षिप्त से हो गये हैं। (प्रकाश) महाराज ! आप क्या करते हैं ? आइये अब राजगृह को चलें।

राजा०—(कुछ न सुन कर) हे परमेश्वर ! यह क्या हुआ क्या हमारी मृत्यु न होगी ?—क्यों !—क्यों ! – ऐं तो क्या होगा !—हमारा क्या होगा। (रोते हैं)

मन्त्री०—हाय ! हाय ! अब क्या करें ? इनको यहां से कैसे लेजांय ?

राजा०—यह क्या ?—हा पुत्री कृष्णे ! क्या है बेटो ! आओ आओ पुत्रि ! तुम्हे क्या हुआ बेटा ?—आओ अपने दुःखित पिता के पास तो आओ – जिसे तू इतनी प्यारी है (रोते हैं) यह क्या भाई वलेन्द्र ! यह क्या यह क्या !—यह क्या करते हो ?—यह क्या करते हो?

ऐसा कर्म—ओह !—(मूर्छित होकर गिर पड़ते हैं)

मन्त्री०—(स्वगत) यह क्या ? हा ! भगवान ! क्या होगा यहां तो कोई है भी नहीं। (ऊँचे स्वर से) अरे कोई है?

(सेवक और रक्षक का प्रवेश)

सेवक - हाय ! हाय ! यह क्या

मन्त्री—धरो, धरो, महाराज को शीघ्र राजगृह ले चलो।

[राजा को लेकर जाते हैं।

—※—

तृतीय गर्भाङ्क।

स्थान उदयपुर—कृष्णकुमारी का मन्दिर।

(अहिल्यादेवी और तपस्विनी का प्रवेश)

अहि०—(चारो ओर देखकर) भगवती ! हमारी कृष्णा तो यहां नहीं दिखाई पड़ती।

तप० - मेरे जान राजनन्दिनी अब लों भी सङ्गीतशाला से नहीं आई । आप इतनी क्यों घवड़ाई जाती हैं ?

अहि०—(निरुत्तर होकर रोती हैं)

तप०—(हाथ धरकर) छी ! छी ! महिषी ! यह क्या ? स्वप्न भी क्या कभी सच होता है, यदि ऐसा होता तो इसी पृथ्वी पर सहस्रों दरिद्र राजा और सहस्रों राजा दरिद्र हो जाते। अनेक लोग अनेक प्रकार के स्वप्न देखते हैं क्या सब सचही होते हैं ?

अहि०—भगवती ! हमारा जी नजाने कैसा हो रहा है; आप हमारी कृष्णा को बुलाइये । मैं इक बेर उसका चन्द्रमुख भली प्रकार देख लूं (रोती है)

तप०—राजमहिषी ! आप इतना न घबड़ावें। आपने ऐसा क्या स्वप्न में देखा है, मैं भी तो सुनूं ?

अहि०—भगवती उस स्वप्न को स्मरण करतेही मेरा सर्वाङ्ग कांप उठता है। (रोती हैं)

तप०—कहीं, क्या स्वप्न है ?

अहि०—मुझे जान पड़ा कि जैसे मैं इस द्वार पर खड़ी हूं इतनेही में एक भयानक वीर पुरुष नङ्गी तल्वार हाथ में लिये इस मन्दिर में घुस आया और –

तप०—क्या आश्चर्य है ! अच्छा फिर ?

अहि०—हमारी कृष्णा जानो इस पलंग पर अकेली सोई है और उस वीर पुरुष ने क्या किया कि जानो इस पलग के निकट आकर उसे खड्ग मारने को उद्यत हुआ; मैं भय से चिल्ला उठी और नींद खुल गई। भगवती मैं नहीं जानती कि मेरे भाग्य में क्या है।

(रोती है)

तप०—राजमहिषी क्या आप नहीं जानतीं कि स्वप्न में बुरा देखने से भला और भला देखने से बुरा होता है।

अहि०—जो हो भगवती ! मैं आज की राति अपनी कृष्णा को किसी प्रकार इस मन्दिर में न सोने दूंगी।

नृप०—(कुछ हँसकर) क्यों महिषी, डर क्या है? (नेपथ्य में वीणाध्वनि) यह लो सुनो मैं कहती थी कि नहीं कि राजनन्दिनी संगीतशाला से आती हैं तो चलो हमलोग भी वहीं चलें। देखो कृष्णा के सामने कहीं इस प्रकार व्यग्र न होना नहीं तो विचारी लड़की आप की यह अवस्था देख कर अत्यन्त दुखी होगी। उसे हवाही क्यों दुख देना और विचार कर देखिये न कि स्वप्न तो निद्रादेवी का इन्द्रजाल मात्र है चलो हमलोग अब चलें। [दोनों जाती हैं।

(हाथ में खड्ग लिये वलेन्द्रसिंह का प्रवेश)

वले०—(स्वगत हम सैकड़ों वेर पहले भी इस मन्दिर में आ चुके हैं किन्तु आज प्रवेश करतेही हमारा पैर आगे नहीं बढ़ता। ठीकही तो है चोर की नाई सेंद देकर गृहस्थ के घर में पैठना क्या भले पुरुष का धर्म है। हा! महाराज ने क्यों मुझे इस निठुर कार्य में भेजा है? यह निर्दयकर्म क्या किसी दूसरे के द्वारा नहीं हो सकता था? मेरी इच्छा होती है कि कृष्णा को न मारकर अपनेही को मार लूं (दीर्घ निश्वास लेकर) किन्तु इससे तो कुछ फल नहीं होगा ; शैय्या के निकट जाकर) यह क्या? कृष्णा तो यहां नहीं है, जाने अवलों सोने नहीं आई। तो अब क्या करूं (घू

मता है)—(नेपथ्य में गीत)—(स्वगत) अहा! हे विधाता मैं क्या ऐसी बोलती हुई कोकिला को चिर-काल के लिये चुप कराने आया हूं ? क्या ऐसे पाप का कहीं प्रायश्चित्त है ? यह देखो कृष्णा इधर आती है ! हा ! हे विधाता ! तू क्यों इस राजवंश पर इतना प्रति-कूल हो गया है। ऐसी निधि देकर क्या फिर उसे अपहरण करेगा ? हाय ! वत्से ! तू क्यों इस निठुर व्याघ्र के मुख में पड़ने को चली आती है ? (आड़ में खड़ा हो जाता है)

(कृष्णा के सहित तपस्विनी का पुनः प्रवेश)

तप०—पुत्री, इतनी रात पर्यन्त क्या गाने बजाने में लगे रहना चाहिए ? जाओ राजमहिषी शयनागार को गईं। तुम भी जाकर सो रहो अब विलम्ब मत करो।

कृष्णा०—अच्छा भगवती, आज हमारी माता इतनी व्यग्र क्यों हैं ? उन्होंने मुझे आज की रात इस मन्दिर में सोने से क्यों वर्जा है ? ।

तप०—राजनन्दिनी। एक तो माता की आत्मा दूसरे तुम उनकी एक मात्र पुत्री और इस समय जो विवाह के विषय यह प्रपंच उठा है—

कृ०—(मुस्कुरा कर) तो क्या मा सोचती हैं कि मुझे इस मन्दिर से कोई चुरा ले जायगा ?

तप०—पुत्री, भला यह भी क्या हो सक्ता है ! चन्द्रलोक से अमृत अपहरण करना क्या ऐसे वैसे का काम है ?

छ०—(झिलमिली खोलकर) उह ! भगवती ! देखो कैसी अंधेरी रात है। निशानाथ के विरह में रजनी देखो मानो वस्त्राभूषण परित्याग कर दुःखसागर में मग्न हो रही है।

तप०—(मुस्कुरा कर) पुत्री ! तुमने ये सब कहां से सीखा जाओ, सो रहो मैं भी इस समय अपनी कुटी को हूं। रात्रि दो प्रहर बीत गई।

छ०—जो आज्ञा भगवती, मैं प्रणाम करती हूं।

तप०—सुखो रहो।

[जाती है।

छ्ण०—(स्वगत) राजा मानसिंह एक वार युद्ध में हार गये हैं, किन्तु सुन्ती हूं कि वे पुनः सेना लेकर जयपुर के राजा पर आक्रमण करने के उद्योग में हैं; देखूं विधाता ने मेरे भाग्य में क्या लिखा है? (दीर्घ निश्वास लेकर) सुभद्रा के लिये अर्जुन ने जैसे यदुकुल के संग घोर युद्ध किया था वैसेही यह भी हो रहा है। (झिलमिली खोल कर) ओह ! कैसी भयानक बिजली है मानो प्रलयकाल की अग्नि पापियों के खोज में पृथ्वी पर घूम रही है, और मेघ की गर्जन सुन कर बड़े २

वीरों का हृदय भी कांप उठता है। ओह! कैसी घनघोर वृष्टि हो रही है। आज क्या यहां प्रलय हो जायगा? यह मन्दिर तो पर्वत की नाईं अटल है; प्रलय की वृष्टि होने पर भी इसे किसी प्रकार का भय नहीं है किन्तु जिन विचारों की छोटी छोटी कुटियां हैं उन्हें आज कैसा कष्ट होगा! अहा! परमेश्वर! उनकी रक्षा कर! हे विधाता! वही मनुष्य, वही बुद्धि, वही आकार है किन्तु कोई तो अपूर्व ऊंचे सुवर्ण अट्टालिका पर इन्द्रतुल्य सुख भोग करता है और कोई आश्रयहीन हो कर वृक्षों के कन्दमूल द्वारा अपना समय काटता है। किन्तु अट्टालिका वास करने ही से कोई सुखी होता हो ऐसा नहीं है। मुझे तो कुछ भी कष्ट नहीं है तो क्यों मैं सुखी नहीं हूं? मन का सुखही सुख है! (दीर्घ निश्वास लेकर) अच्छा! मेरा मन आज इतना चंचल क्यों हुआ है? पृथिवी की कोई वस्तूही नहीं अच्छी लगती। । मेरा मन पिंजरे की पक्षी की नाईं व्याकुल हो रहा है। देखूं कदाचित सोने से कुछ स्वस्थ हो जाय, तो चलूं; हे महादेव मुझ अधीन पर दया करो और मेरे मन की चञ्चलता दूर करो! हे प्रभू! यह दासी तुम्हारी शरणागत है। (सोती है।)

(वसीन्द्रसिंह का पुनः प्रवेश)

व०—(स्वगत) हाय ! हाय ! मैं ऐसा निठुर कर्म करने आया हूं कि जिस से मुझे शंका होती है कि कहीं पृथ्वी में न समा जाऊं, मुझे ऐसा भान होता है कि जैसे पद पद पर पृथ्वी मुझे ग्रास करने के लिये चली आती है। यह भी तो अच्छा है। हे रजनी देवि! तू ही हमारी साक्षी है मैं यह काम अपनी इच्छा से नहीं करता। (निकट आकर) हाय! हाय! मैं क्या रूपसुन्द राजसरोवर से इस कमलिनी को छिन्न भिन्न करने आया हूं? ऐसे सुवर्णमन्दिर में सेंद देकर इस का जीवनरूपी धन अपहरण करने की अपेक्षा क्या और कोई पाप है? (कुछ सोच कर) तो क्या करूं ज्येष्ठ भाई की आज्ञा को अवहेला करना भी तो महा पाप है (दीर्घ निश्वास लेकर) मेरी तो मारीच राक्षस की सी दशा हो रही है किसी ओर भी परित्राण नहीं है तो भला इस पुत्री का चन्द्रवदन एक बेर तो देख लूं! (मुख देख कर) हे विधाता! मैं क्या राहु होकर इस पूर्ण शशि को ग्रास करने आया हूं? मैं क्या प्रलय के कालरूप की नाईं इसे चिरकाल के लिये जलमग्न करने आया हूं? (नेत्र पोंछ कर) अहा! पुत्री! मैं बड़ा निठुर चाण्डाल हूं! निरापराधही तेरा प्राण लेने

आया हूं, अहा! पुत्री इस समय निश्चिन्त होकर निद्रा देवी की गोद में विश्राम करती है और जान पड़ता है कि नाना विधि के मनोहर स्वप्नों से परमसुखानुभव कर रही है; किन्तु निकटही जो पितृव्यरूप काल आकर खड़ा है सो स्वप्न में भी नहीं जानती। हाय! हाय! जिसे मैं इतना प्राणतुल्य प्यार करता हूं जिसकी ममता से अनेक युद्धजीवीजनों के कठिन हृदय में भी अपार स्नेह रस प्रवाहित हुआ है उसे क्या मैं नष्ट करने आया हूं? क्या अन्त में बलेन्द्रसिंह के शस्त्र की यही कीर्ति हुई? धिक्! धिक्! (सोच कर)
तो अब क्या—ओह! इस स्नेहबन्धन को तोड़ना क्या मनुष्य का कर्म है? द्रौपदी के वस्त्र की नाईं इसे जितना खोलते जाइये उतनाही बढ़ता है। हे पृथ्वी! तुम साक्षी रहना। हे रजनी देवी! तुम साक्षी रहना (मारने के लिये हाथ उठाते हैं)।

छाया—(अचानचक उठ कर) ऐं। ऐं। चाचा यह क्या? यह क्या?

बले०—(खड्ग पृथ्वी पर फेंक देते हैं।)

छाया—ऐं? चाचा यह क्या? आप इस समय यहां कैसे आये?

बले०—इस समय कुछ नहीं—केवल तुझे एक बार देखने

आया था (नैन डबडबा कर) सो पुत्री इसें बिदा करो ! मैं चला।

कृ०—चाचा ! आप अत्यन्त वीरपुरुष हैं; तो आप को क्या इस दासी पर खड्ग उठाना उचित है ?

बलि०—(मुंह फेर कर निरुत्तर हो रोते हैं।)

कृ०—यह क्या ? (खड्ग उठा कर छिपा लेती है।)

(प्रकाश) चाचा ! मैं आप के पांव पड़ती हूं आप मुझे सब हाल खोल के कहिये।

बलि०—पुत्री ! तू इस निठुर नराधम को अब चाचा क्यों कहती है। मैं तो तेरा चाचा नहीं, मैं चाण्डाल हूं, मैं तेरा काल होकर आया था (रोते हैं।)

कृ०—सो क्यों ? चाचा।

बलि०—हा ! हमारी कुललक्ष्मी !—हे पृथिवी ! तू बीच से फट जा और इस दुष्ट नराधम को स्थान दे (रोते हैं)

कृ०—(हाथ धर के) क्यों, चाचा ! आप इतने दुखित औ चञ्चल क्यों हैं ? ।

बलि०—कृष्णे ! मैं तेरा प्राण नाश करने आया था।

कृ०—क्यों ? चाचा आपका मैंने क्या अपराध किया है ?

बलि०—पुत्री ! तू साक्षात् लक्ष्मी का अवतार है । तुझ से और अपराध से क्या प्रयोजन ? (रोते हैं) मरुदेश के राजा मानसिंह औ जैपुर के राजा जगतसिंह दोनों

ने तेरे पाणिग्रहण की प्रतिज्ञा की है नहीं तो उदयपुर को भस्म कर इस राज को मटियामेट कर डालेंगे— हमारी इस समय जैसी अवस्था है सो तो तू जानती ही है ! इसी कारण—

छ०—चाचा ! मेरे पिता जी को भी क्या यही इच्छा है, जो मैं—

बले०—बेटी ! मैं अब क्या कहूं बिना उनकी अनुमति के भला क्या मैं ऐसा चाण्डाल कर्म करने में प्रवृत्त होता ?

छ०—ऐसा ? तो फिर इसके लिये आप इतने कातर क्यों होते हैं ? आप पिताजी को एक बेर यहां बुला लीजिये मैं उनके चरणकमलों में प्रणाम करके विदा होऊँ। चाचा मैं राजपुत्री हूं ! राजकुलपति महाराज भीमसेन की कन्या हूं और आप सरीखे वीरसिंह की भतीजी हूं तो मैं क्यों मृत्यु से डरती हूं ? (आकाश में कोमल वाद्य) यह सुनो चाचा एक बार इस द्वार से देखो तो। अहा ! कैसा अपूर्व सौन्दर्य है, यही पद्मनी सती हैं ये मुझे एक बेर इसके पूर्व भी दिखलाई पड़ी थीं, जननि ! अपनी दासी को बस आई समझो, देखो चाचा यह मन्दिर अचानचक नन्दन वन के सुगन्ध से परिपूर्ण हो गया अहा ! मेरा कैसा सौभाग्य है।

(नेपथ्य में पैर का शब्द होता है।)

बले० – यह क्या ? यह क्या ?

कृष्णा

(राजा के पीछे २ मंत्री का प्रवेश)

राजा - (पागल की नाईं इधर उधर देखते हैं) ।

मन्त्री — (राजा को देख कर स्वगत) यही तो है, भला, अभी लों नाश हुआ यही कुशल है, (आगे बढ़ कर धीरे वलेन्द्रसिंह से) राजकुमार, क्या देखते हो—अब तो सर्वनाश हुआ चाहता है। महाराज को उन्माद हो गया है।

वले० —सर्वनाश कैसा ? (राजा विना आसन के पृथिवी ही पर बैठ जाते हैं) हाय। हाय। यह क्या हुआ, मन्त्री, तुम इन्हें यहां क्यों लाये ?

मन्त्री—क्या करूं—वे आपही इधर चले आये। सो मुझे उनके संग आनाही पड़ा कि क्या जाने कहीं और न चले जांय। और एक बात यह विचारा कि जब महाराज की ऐसी अवस्था हो गई है तो अब इस निठुर गुरुतर पाप कर्म से क्या लाभ है ? इसीलिये आप से निवेदन करने आया हूं। इसके उपरान्त अब जो कुछ हमारे अदृष्ट में होगा सो होगा। हाय, हाय, राजकुमार—

राजा – वलेन्द्र ! छि। छिः भाई ! क्या तुम ऐसा काम करते हो ? । (कुछ शरीर उचकाते २) क्या करते हो क्या करते हो ? ना—न, न, न—मानसिंह, मानसिंह,

मानसिंह, । हुं । उसे तो मैं इसी समय नष्ट करूंगा—लो मैं चला ।—(कुछ चल कर) कहां है हमारी कृष्णा । क्यों बेटी ? क्यों—बेटी ! एक बेर बीणा तो बजाओ बेटी ! जरा गाओ बेटी ! अहाहा यही, यही, हा ! मेरी कुललक्ष्मी ! तू कहां चली गई भाई ।

(रोते हैं ।)

कृष्णा—(राजा की अवस्था का शोक विचार कर) चाचा, पिता जी यह क्या कहते हैं ? पिता जी, आप ऐसे साधारण विषय पर इतना खेद क्यों करते हैं ? सभी जीव यमराज के आधीन हैं । तो इसमें दुःख करने से ही क्या लाभ है ? जीवन तो कभी चिरस्थाई नहीं है। जो आज नहीं मरता कल मरेगा। कुल और मानरक्षा के लिये जीवनदान करने की अपेक्षा क्या कोई भी पुण्यकार्य्य है ? (आकाश में कोमल वाद्य होता है) यह सुनो ! राजसती पद्मिनी मुझे बुलाती हैं। वे इसके पूर्वही मुझे स्वप्न में दिखाई देकर यों कह गई थीं कि "कुल औ मानरक्षा के लिये जो युवती अपना प्राण देती है सुरलोक में उसके आदर की सीमा नहीं है" पिता आप इस दासी को सहर्ष विदा कीजिये इस अन्तकाल में जो मैं माताजी के चरणों का दर्शन नहीं कर सकी यही एक दुःख मन में रह गया (रोती है)

[illegible]—छि। छि। पुत्री अब तुम ये सब बातें मुंह से मत निकालो तुम्हारे शत्रु का अन्तकाल होवे।

[illegible]—चाचा। ऐसा कोई जीव नहीं है जिसके भाग्य में विधाता ने मृत्यु न लिखा हो। किन्तु सबके भाग्य में मृत्यु यशोदायक नहीं होती। अनेक वृक्षों को लोग काट डालते हैं किन्तु ऐसा विरला ही वृक्ष होता है जिसके काठ से प्रतिमा बनती है। कुल और मान की रक्षा के लिये अथवा परोपकार के लिये जिसकी मृत्यु होती है वही चिरस्मरणीय होता है।

बले॰—पुत्री। अब ये सब बातें तू मत कह। तू हमारी जीवन सर्वस्व है। क्या यह राज्यपद तुझ से बढ़ कर प्रिय है।

हास्या—चाचा, आप ऐसी बात न कहिये। आप ने मुझे बाल्यावस्था से प्राणतुल्य पाला है सो अब आप मेरा सब अपराध क्षमा कर विदा कीजिये। पिता आप भी नरपति हैं विधाता ने सहस्त्रों प्राणी के प्रतिपालन करने के निमित्त आप को राजपद पर नियत किया है तो आप को उनका सुख दुःख भूल जाना किसी प्रकार उचित नहीं है। तो आप इस दासी को सहर्ष विदा कीजिये। आप चुप क्यों हो रहे ? मैंने क्या अपराध किया है जो आप मुझ से नहीं बोलते? आप

इस पुत्री को इस समय यही आशीर्वाद दीजिये कि इस भवयन्त्रना से मुक्त होकर सुरपुरी को जाऊँ।

(चरण पर गिरती है।)

राजा—यही न मानसिंह का दूत है?—इतना अहङ्कार हमारे साम्हने?

कृष्णा—(उठ कर) पिताजी! मैंने आपका क्या अपराध किया है?

राजा—क्या अपराध?—हमसे छल? दूर! दूर!

मन्त्री—हाय! हाय!!

कृष्णा—हा! विधाता! क्या मेरे अदृष्ट में यही बदा था? इस समय क्या पिताजी भी विमुख हो गये? चाचा, मैंने पिताजी का क्या अपराध किया है जो वे मुझ से इतने विरक्त हो गये हैं? (आकाश में कोमल वाद्य होता है) आः, लो मैं जाती हूं चाचा, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं (चरणों पर गिरती है) आप भी मुझे विदा कीजिये।

बले०—उठो! बेटी उठो! यह क्या? छि! (हाथ धर के उठाते हैं) तू हमारी जीवन सर्वस्व है, तुझे विदा—

(आकाश में कोमल वाद्य होता है)

कृष्णा—जननि! मैं आई। (आचाञ्चक खड्गाघात करके शय्या पर गिरती है।)

सब—अरे! यह क्या? यह क्या? हा! हा!—

बले॰—हे विधाता, तेरे मन में क्या था? हे परमेश्वर! तूने क्या हमें यथार्थही परित्याग कर दिया? हाय! हाय! (रोते हैं।)

(तपस्विनी का प्रवेश)

तप॰—यह क्या? (देखकर) हाय! हाय! इस राजकुल-लक्ष्मी को यह क्या दशा हुई? हा! इस रत्नदीपक को किसने बुझाया? हा! (रोती है।)

बले॰—भगवति! अब हमारा क्या होगा? इधर तो यह और उधर महाराज की वह दशा देखती हो? हा! भैया क्या आप के अदृष्ट में यही था! भगवति—

तप॰—क्यों? क्यों? महाराज को क्या हुआ? वे ऐसा क्यों करते हैं?

बले॰—भगवति! यह सब हमारेही अदृष्ट का फल है! महाराज को अचानक महा उन्माद हो गया है।

तप॰—क्यों? क्यों? क्या कारण?

(अहिल्यादेवी का शीघ्रता से प्रवेश)

अहि॰—(नेपथ्यही में से) कौन है? कौन है? हमारी कन्या कहां? (देख कर) यह क्या? हमारी कन्या ऐसी क्यों पड़ी है?—हा! महाराज यह किसने किया?

तप०—महिषी, महाराज से आप क्या पूछती हैं ? महाराज क्या अपने आपे में हैं ?

अहि०—तो जान पड़ता है कि इन्हींही ने यह काम किया है। हा पुत्रि ! हमारा सर्वस्वही नाश हो गया (कृष्णा का मुख देख कर रोती है) आहा ! वेटी हमारी सुवर्णलता की नाईं पड़ी है। वेटी कृष्णा ! यह तेरी अभागिनी माता खड़ी पुकार रही है वेटी। हा पुत्रि! तू हमें किस अपराध से छोड़ चली है वेटी ! उठो ! वेटी उठो ! हाय। हाय। तू हमसे क्यों रूठ गई वेटी?

(रोती है।)

कृष्णा—(धीरे मधुर स्वर से) मा ! आई हो ?—मुझे अपने चरणों की धूल दो मा !—पिताजी मुझ से अत्यन्त रुष्ट हैं तुम उनसे कह दो कि वे मेरा सब अपराध क्षमा करें ! मा, मैंने तुमारे भी अनेक अपराध किये हैं सो उन सबों को तुम भी अब क्षमा करो और मुझे बिदा करो मा। अपनी इस दुःखिनी पुत्री को कभी २ स्मरण करियो मा ! (मृत्यु—आकाश में कोमल वाद्य होता है।)

अहि०—वेटी। तूने क्या अपराध किया है पुत्रि ! (रोती है) हाय ! यह क्या। यह तो चुप हो गई ! हा पुत्रि। हा पुत्रि। (मूर्छित हो जाती है।)

तप०—हा ! यह क्या हुआ ? राजमहिषी भी वेसुध हो गईं महिषी उठिये ! हाय ! हाय ! क्या एक वेर सव नाश हो जायगा ? ।

महि०—(चैतन्य होकर) भगवती ! मैं क्या स्वप्न देखती हूं—महाराज यह किसने किया ? यह क्या ? (उठ कर) तुम सव के सब चुप हो गये हो ।

रा०—आह, (आगे बढ़कर) राजमहिषी, (हाथ धर कर) देखो तुमने हमारी कृष्णा को कहीं देखा है ? क्यों ?

महि०—महाराज ! आप इस हाथ से मुझे स्पर्श न कीजिये आपही के हाथ से मेरी कृष्णा का अन्त हुआ । वस मैं भी अब विदा होती हूं ।

[शीघ्रता से जाती है ।

मन्त्री—भगवती ! आप जाके देखें तो राजमहिषी कहां चली गईं ?

तप०—मैं अभी उनके साथही साथ जाती हूं ।

[जाती है ।

राजा—महिषी ! कहां जाती हो ? कहां जाती हो ? क्या चली गईं तुम भी चली गईं ? (रोते हैं) हा कृष्णे ! हा कृष्णे ! हा पुत्री ! मैं भी जाता हूं वस मैं भी चला । भाई बलेन्द्र ! कृष्णा—कृष्णा—हमारी कृष्णा !

(रोते हैं)

मन्त्री—राजकुमार ! मैं चिरकाल से इस वंश का अधीन हूं । मुझे क्या अन्त्य में यही देखना पड़ा ? (रोता है)

(अन्तःपुर में रोने की ध्वनि—तपस्विनी का पुनः प्रवेश)

तप०—हाय! हाय! क्या हुआ? राजकुमार! राजमहिषी भी स्वर्गारोहण कर गई' हाय! हाय! मैंने ऐसा सर्वनाश कभी नहीं देखा। यह क्या विधाता की सामान्य विडम्बना है? हाय! हाय! हाय!

वले०—मन्त्री क्या सभी का अन्तकाल हुआ? (रोते हैं) हाय! हाय! हाय! मृत्यु क्या मुझे भूल गई? दादा यह देखो हमारी राजकुललक्ष्मी महानिद्रा में पड़ी हैं तो अब इस राज्य से क्या प्रयोजन है? हाय! हाय!

राजा—भाई वलेन्द्र! क्षमा—हमारी क्षमा।

वले—हा! महाराज! आप ज्ञानशून्य हो गये हैं। कुछ भी नहीं जान सकते कि क्या हुआ। हाय! हाय! हाय! सो भाई यह आपका बड़ा सौभाग्य हैं। ऐसे समय में ज्ञान से अज्ञान बहुत अच्छा। यह कष्ट क्या सहा जाता है? (रोते हैं)

सत्य०—राजकुमार! अब आक्षेप करना वृथा है। महाराज को यहां से ले चलिये। और आइये इस विषय में जो कर्त्तव्य है सो देखा जाय। इधर तो सभी समाप्त हुआ हाय! हाय। हे विधाता तेरी क्या अद्भुत लोला है, आइये राजकुमार! अब विलम्ब करने से क्या लाभ?

[सब धीरे २ चलते हैं।

(जवनिका गिरती है)

इति।